सुन्दर कहानियाँ

श्रीमाताजी

श्री माताजी

सुन्दर कहानियां

श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी-२

(Belles Histoires का मूल फ्रेंच से अनुवाद)

अनुवादिका : लीलावती

चतुर्थ संस्करण १९७३

मुद्रक और प्रकाशक : ऑल इंडिया प्रेस, श्रीअरविन्द आश्रम,
पांडिचेरी-२

हिन्दी-पाठकों के लिये
श्री माताजी के आशीर्वादरूप
दो शब्द

Ces histoires ont été écrites pour aider les enfants à se trouver eux-mêmes et à suivre un chemin de rectitude et de beauté.

Février 1950.

(हिन्दी अनुवाद)

ये कहानियां इसलिये लिखी गई थीं कि इन्हें पढ़कर वच्चे अपने-आपको जानना तथा सत्य और सौंदर्य के मार्ग का अनुसरण करना सीखें।

—श्री माताजी

कहानियां

सुन्दर कहानियां

१

आत्म-संयम

हम जंगली घोड़े को तो वश में कर सकते हैं, परंतु बाघ के मुंह में लगाम नहीं लगा सकते।

यह क्यों ? क्योंकि बाघ में एक ऐसी बुरी और क्रूर प्रवृत्ति होती है जो किसी प्रकार सुधारी नहीं जा सकती। इसी कारण हम उससे किसी भी अच्छे व्यवहार की आशा नहीं करते और उसे मार डालने के लिये विवश हो जाते हैं जिससे वह हमें कोई हानि न पहुंचा सके।

इसके विपरीत, एक जंगली घोड़ा, प्रारंभ में वह चाहे कितना ही अड़ियल और भड़कैल क्यों न हो, थोड़े से यत्न और धैर्य द्वारा वश में किया जा सकता है। कुछ समय बाद वह हमारी आज्ञा का पालन तथा हमसे प्रेम करना भी सीख जाता है। अंत में तो वह लगाम चढ़वाने के लिये स्वयं ही अपना मुंह आगे बढ़ा देता है।

मनुष्यों में भी कुछ विद्रोही और उद्दंड प्रवृत्तियाँ तथा इच्छाएँ होती हैं, पर ऐसा शायद ही कभी होता हो कि वे बाघ की भाँति वश में न लाई जा सकें। अधिकाँश में तो वे जंगली घोड़े के सदृश होती हैं और उनके सुधार के लिए आवश्यकता होती है केवल एक लगाम की। और सबसे बढ़िया लगाम वह है, जो मनुष्य स्वयं अपनी प्रवृत्तियों पर लगाता है। इसे ही हम आत्म-संयम कहते हैं।

हुसैन पैगम्बर मोहम्मद के नाती थे। उनके रहने का मकान खूब आलीशान था, थैलियाँ अशर्फियों से भरी थीं। उनको नाराज करना धनी मनुष्य को नाराज करना था। और धनी का क्रोध बहुत भयंकर होता है।

एक दिन की बात है, एक गुलाम खौलते हुए पानी का बर्तन लिये हुसैन के पास से गुजरा। वे उस समय भोजन कर रहे थे। दुर्भाग्य-वश थोड़ा सा पानी उछलकर पैगम्बर के नाती के ऊपर गिर पड़ा। वे क्रोध से चिल्ला उठे।

गुलाम घुटने टेककर बैठ गया। उसका मन उस समय इतना स्वस्थ और संयत था कि ठीक अवसर के उपयुक्त उसे कुरान की एक आयत स्मरण हो आई।

"स्वर्ग उन लोगों के लिये है जो अपने क्रोध को वश में रखते हैं", उसने कहा।

"मैं क्रोधित नहीं हूँ", इन शब्दों से प्रभावित होकर हुसैन बीच में ही बोल उठे।

"और उन लोगों के लिये है जो मनुष्यों को क्षमा करते हैं", गुलाम बोलता गया।

"मैं तुझे क्षमा करता हूँ", हुसैन बोले।

"क्योंकि भगवान् दयालु व्यक्तियों को प्यार करते हैं," गुलाम ने अंत में कहा।

इस बातचीत के समाप्त होते न होते हुसैन का सारा गुस्सा काफूर हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि उनका हृदय अत्यन्त कोमल हो उठा है। गुलाम को उठाते हुए उन्होंने उससे कहा—"ले, ये चार सौ दिरहम ले, तू आज से स्वतन्त्र है।"

इस प्रकार हुसैन ने अपने उतावले मन पर—जो उतना ही
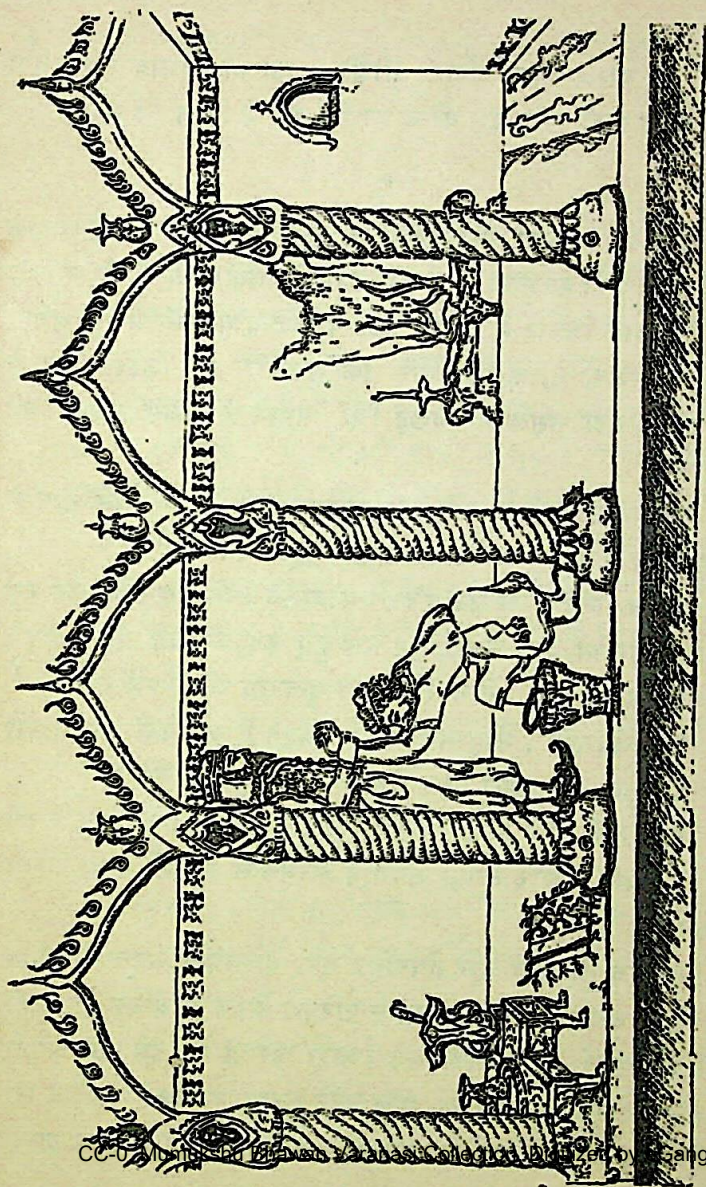
हुसेन ने गुलाम का हाथ पकड़ कर उठाया और कहा "तू आज से स्वतंत्र है .." ।

उदार भी था––लगाम लगानीं सीखी। उनका स्वभाव न तो बुरा था और न कठोर, वह इस योग्य था कि वश में किया जा सके।

*

इसलिये, बालको, यदि तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारे अध्यापक कभी तुम्हें अपने स्वभाव को वश में करने के लिये कहते हैं तो इसलिये नहीं कि उनके विचार में तुम्हारे छोटे या बड़े दोष किसी प्रकार सुधारे नहीं जा सकते, बल्कि इसलिये कि तुम्हारा तेज और उत्साही मन उस अच्छी नसल के बछड़े के समान है जिसे लगाम की जरूरत है।

एक मामूली सी झोंपड़ी और राजमहल में से तुम अपने रहने के लिये किसे पसंद करोगे? निःसंदेह महल को।

एक कहानी है कि जब हजरत मोहम्मद स्वर्ग देखने के लिये गये तो वहाँ उन्होंने कुछ ऊंचाई पर बने हुए कई बड़े-बड़े महल देखे। उनकी सुन्दरता के सामने सारे देश की सुन्दरता फीकी पड़ रही थी!

"ऐ जिब्राइल", मोहम्मद ने उस देवदूत से जो उन्हें स्वर्ग दिखा रहा था पूछा, "ये महल किन लोगों के लिये बनाये गये हैं?"

देवदूत ने उत्तर दिया––"उन लोगों के लिये जो अपने क्रोध को वश में रखते हैं और अपना अपमान करनेवाले को भी क्षमा करना जानते हैं।"

सचमुच ही शाँत और द्वेषरहित मन वास्तविक महल के समान है। पर आवेश और प्रतिहिंसा से परिपूर्ण मन के लिये यह बात नहीं कही जा सकती। हमारा मन हमारा घर है। इसे हम अपनी इच्छानुसार एक ऐसा स्वच्छ, शाँत और सुन्दर घर बना सकते हैं जो सुरीले और तालमय स्वरों से भरा हो। और हम इसे दुःखप्रद शब्दों

और बेसुरी चिल्लाहटों से भरी हुई भयावह और अंधेरी गुफा भी बना सकते हैं।

*

उत्तर फ्रांस के एक शहर में रहनेवाले एक लड़के से मेरा परिचय था। वह लड़का मन का तो सरल था पर उसका हृदय बड़ा जोशीला था। क्रोध में आने के लिये वह मानों सदैव तैयार बैठा रहता था।

एक दिन मैंने उससे कहा—"जरा सोचकर बताओ तो, तुम्हारे जैसे हृष्ट-पुष्ट लड़के के लिये कौन सी बात अधिक कठिन है—थप्पड़ के बदले थप्पड़ लगाना, मारने वाले साथी के मुंह पर घूंसा जमा देना या ठीक उसी समय अपनी मुट्ठी को जेब में डाल लेना ?"

"अपनी मुट्ठी को जेब में डाल लेना", उसने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो अब यह बताओ कि तुम्हारे जैसे साहसी लड़के के लिये सबसे आसान काम करना उचित है या, इसके विपरीत, सबसे कठिन काम ?"

एक मिनट सोचकर कुछ हिचकिचाते हुए उसने उत्तर दिया—"सबसे कठिन काम।"

"बहुत ठीक, अब अगली बार जब ऐसा अवसर आये तो यही करने का यत्न करना।"

इसके कुछ दिन बाद वह युवक एक दिन मेरे पास आया और उसने मुझे समुचित गर्व के साथ बताया कि वह "सबसे कठिन कार्य" करने में सफल हुआ है।

उसने कहा, "कारखाने में मेरे साथ काम करनेवाले मेरे एक साथी ने, जो अपने बुरे स्वभाव के लिये प्रसिद्ध है, क्रोध में आकर मुझे मार दिया। वह जानता था कि मैं साधारणतया क्षमा नहीं किया करता

और मेरी बाहुओं में बल भी है,वह अपनी रक्षा के लिये तैयार हो गया। ठीक उसी समय मुझे आपकी सिखाई हुई बात स्मरण हो आई। वैसा करना जितना मैंने सोचा था उससे कहीं अधिक कठिन लगा, पर मैंने अपनी मुट्ठी जेब में डाल ही ली। ज्यों ही मैंने ऐसा किया मेरा गुस्सा न जाने कहाँ चला गया और उसके स्थान पर मैं उस साथी के प्रति दया अनुभव करने लगा। अब मैंने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया। इससे उसे इतना आश्चर्य हुआ कि एक क्षण तो वह मुंह बाये मेरी ओर ताकता रहा, एक शब्द भी न बोल सका; फिर वह शीघ्रता से मेरे हाथ की ओर लपका, उसे जोर से दबाया और एकदम पिघलकर बोला, अब तुम मेरे साथ जैसा बर्त्ताव करना चाहो कर सकते हो। मैं सदा के लिये तुम्हारा मित्र हूँ।"

उस लड़के ने अपना क्रोध उसी तरह वश में कर लिया जैसे कि खलीफा हुसैन ने किया था।

परंतु इसके अतिरिक्त कई और भी चीजें हैं जिन्हें वश में करने की जरूरत है।

*

अरब देश के कवि अल-कोजई रेगिस्तान में रहा करते थे। एक दिन उन्हें नाबा का एक सुन्दर पेड़ दिखाई दिया। उन्होंने उसकी टहनियों से एक धनुष और कई तीर बनाये।

रात में वे जंगली गधों का शिकार करने निकले। शीघ्र ही उन्हें गधों के एक झुंड की पदचाप सुनाई दी। उन्होंने एक तीर छोड़ा। पर धनुष की डोरी उन्होंने इतने जोर से खींची कि तीर झुंड के एक जानवर के शरीर को भेदता हुआ पास की एक चट्टान से जा टकराया। चट्टान से तीर के टकराने की आवाज सुनकर
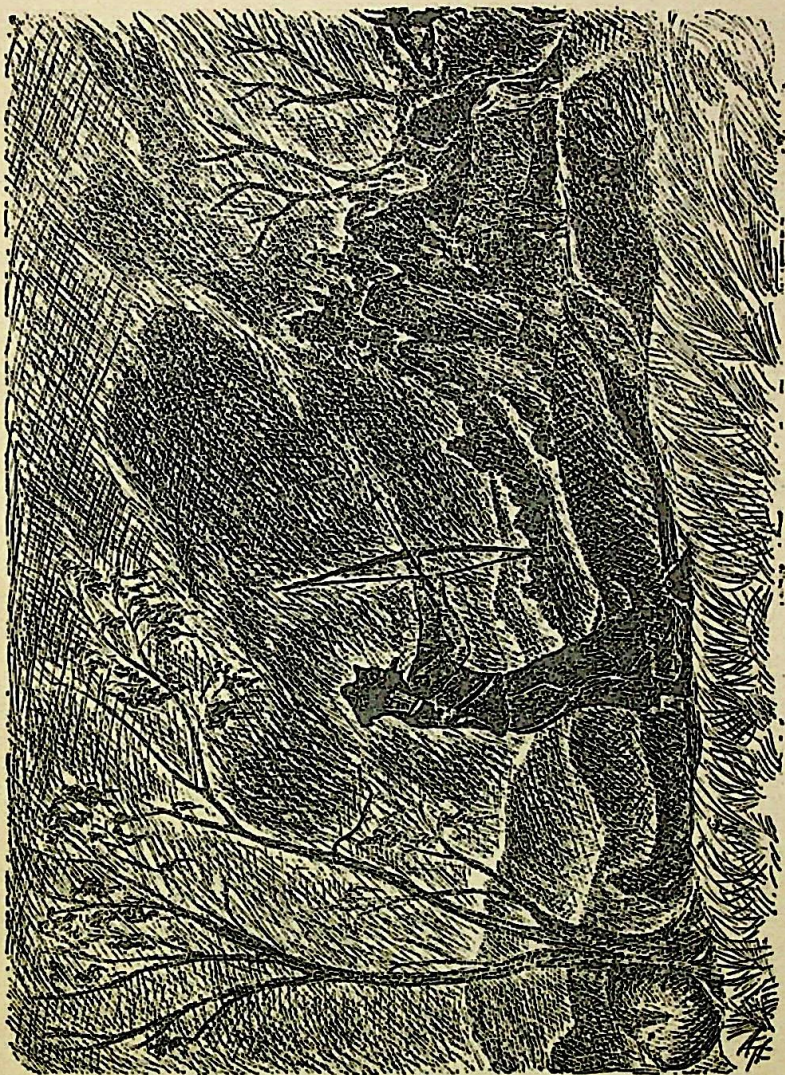
रात्रि के अन्धकार म अल-कोजई ने जंगली गधे की ओर तीर छोड़ा

अल-क्रोजई ने सोचा कि उनका वार खाली गया है। अब उन्होंने दूसरा तीर छोड़ा, और इस बार भी वह एक जानवर के शरीर को पार करता हुआ चट्टान के जा लगा। अल-कोजई ने अब भी यही समझा कि निशाना चूक गया। उन्होंने इसी तरह तीसरा, चौथा और पाँचवाँ तीर चलाया और प्रत्येक बार उन्होंने वही आवाज सुनी। पाँचवीं बार तो क्रोध में आकर उन्होंने अपना धनुष ही तोड़ डाला।

अगले दिन सबेरा होने पर उन्होंने पांचों गधों को चट्टान के पास मरा हुआ पाया।

यदि उनमें कुछ अधिक धैर्य होता, यदि उन्होंने दिन निकलने की प्रतीक्षा की होती तो अपनी शाँति के साथ साथ वे अपना धनुष भी बचा लेते।

*

पर इससे किसी को यह नहीं समझना चाहिये कि ऐसी शिक्षा को, जो मनुष्य-चरित्र का सारा उत्साह और बल दूर कर उसे दुर्बल बना दे, हम उचित समझते हैं। यदि हम किसी जंगली घोड़े के लगाम लगाते हैं तो इसलिये नहीं कि वह उसका मुंह काट दे या उसके दाँत ही तोड़ दे। यदि हम चाहें कि वह अपना कार्य अच्छी तरह करे तो हम उसकी लगाम ऐसे पकड़ेंगे कि वह आगे बढ़ सके, इतनी निर्दयता से नहीं खींचेंगे कि वह चल ही न सके।

दुर्भाग्य से ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिनका स्वभाव भेड़ के स्वभाव से मिलता है। उन्हें चलाने के लिये बस मामूली सा कहना ही काफी होता है।

कुछ गुलाम के से स्वभाव वाले होते हैं--जड़, निःशक्त और बेहद दब्बू।

अबू उस्मान अल-हिरी अपने अत्यधिक धैर्य के लिये प्रसिद्ध था। एक दिन वह एक उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रित किया गया। जब वह अपने निमंत्रण देने वाले के घर पहुंचा तो उसने उससे कहा, "मुझे आज क्षमा कीजिये, आज मैं आपका स्वागत नहीं कर सकता। मेरी आप से प्रार्थना है कि आप लौट जायँ। भगवान् की दया आप पर बनी रहे।"
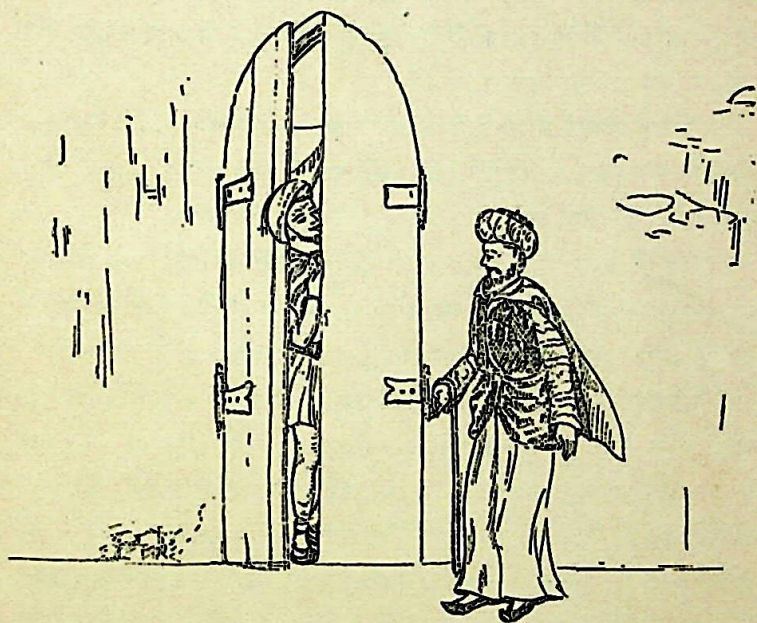
अबू उस्मान मित्र के निमंत्रण पर बार बार जाकर वापिस लौट आया

अबू उस्मान अपने घर लौट गया। उसके घर पहुँचते ही उसका मित्र उसे फिर से निमंत्रित करने के लिये आ पहुँचा।

अबू उस्मान भी अपने मित्र के पीछे-पीछे उसके घर के द्वार तक चला आया, पर मित्र वहीं रुक गया और उसने उस दिन के लिये उससे फिर क्षमा माँगी। इस बार भी अबू उस्मान बिना ननुनच किये वापिस लौट गया।

तीसरी बार और चौथी बार भी यही मामला दुहराया गया। परंतु अन्त में उसके मित्र ने उसका स्वागत किया और सब लोगों की उपस्थिति में उससे कहा, "मैंने आप के साथ ऐसा बर्ताव इसलिये किया था कि आपके भले स्वभाव की परीक्षा हो जाय। मैं आपके धैर्य और नम्रता की प्रशंसा करता हूँ।"

"मेरी प्रशंसा न कीजिये", अबू उस्मान ने उत्तर दिया, "क्योंकि यह गुण तो कुत्तों में भी होता है; उन्हें बुलाओ तो वे आ जाते हैं और दुतकारो तो लौट जाते हैं।"

अबू उस्मान मनुष्य था, कुत्ता नहीं; और जो वह न्याय और आत्मसम्मान का जरा भी ख्याल न करके, अपने मित्रों की हंसी का कारण बना, इससे किसी को कोई लाभ नहीं पहुंचा।

तो क्या इस दीन स्वभाववाले मनुष्य के अंदर वश में लाई जानेवाली कोई चीज नहीं थी? हाँ, थी। वह ऐसी चीज थी जिसे वश में लाना सबसे अधिक कठिन है। वह थी उसके स्वभाव की दुर्बलता। इसका कारण यह था कि वह स्वयं अपने ऊपर शासन करना नहीं जानता था। अतएव, प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाता था।

*

एक नवयुवक ब्रह्मचारी बड़ा चतुर था और वह अपने इस गुण को जानता भी था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह अपनी योग्यताएँ

अधिक से अधिक बढ़ाये जिससे सर्वत्र उसकी प्रशंसा हो। इसके लिये उसने एक के बाद एक कई देशों की यात्रा की।

एक तीर बनाने वाले के यहाँ उसने तीर बनाना सीखा।

कुछ दूर आगे जाकर उसने नाव बनाना तथा उसे खेना सीखा।

एक जगह उसने गृह-निर्माण की कला सीखी।

फिर एक जगह उसने कुछ और कलाएँ सीखीं।

इस प्रकार वह सोलह देशों का पर्यटन कर वापिस घर लौटा और बड़े गर्व के साथ कहने लगा, "इस पृथ्वी पर मेरे समान गुणी मनुष्य और कौन है?"

एक दिन भगवान् बुद्ध ने उस ब्रह्मचारी को देखा और उन्होंने सोचा कि उसे ऐसी कला की शिक्षा देनी चाहिए जो उन सबसे, जो उसने अबतक सीखी हैं, अधिक महान् हो। वे एक बूढ़े श्रमण का रूप धारण करके उस नवयुवक के पास गये। उनके हाथ में एक भिक्षापात्र था।

"आप कौन हैं?" ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया।

"मैं एक ऐसा मनुष्य हूँ जो अपने आप को वश में रख सकता हूँ।"

"आपके कहने का तात्पर्य?"

"एक धनुर्वेदी तीर चलाना जानता है", बुद्ध ने उत्तर दिया, "एक नाविक नाव खेता है; एक शिल्पी अपनी देख-रेख में मकान बनवाता है; पर एक ज्ञानी स्वयं अपने ऊपर शासन करता है।"

"वह कैसे?"

"यदि कोई उसकी प्रशंसा करे तो उसका मन चंचल नहीं होता; यदि कोई उसकी निंदा करे तो भी वह शांत रहता है; वह सर्वहित के

महानियम के अनुसार कर्म करता है और इस प्रकार वह सदा शाँति में निवास करता है।"

अच्छे बच्चो! तुम भी अपने ऊपर शासन करना सीखो। और अगर अपने स्वभाव को वश में करने के लिये तुम्हें कठोर लगाम लगाने की भी आवश्यकता पड़े, तो शिकायत मत करो।

एक चंचल युवा घोड़ा जो धीरे-धीरे संयत हो जायगा उस मूक काठ के घोड़े से कहीं अच्छा है जो जैसा उसे बना दिया गया है सदा वैसा ही रहता है और जिस पर केवल हँसी-खेल के लिये ही लगाम चढ़ाई जाती है।

प्रश्न

१. तुम जंगली घोड़े को तो वश में कर सकते हो, पर बाघ को नहीं, यह क्यों ?
२. अपनी प्रवृत्तियों पर लगाम लगाने का क्या अर्थ है ?
३. भगवान किन व्यक्तियों को प्यार करते हैं ?
४. 'संयम और शान्त और द्वेषहीन मन' से तुम क्या समझते हो ?
५. फ्रांस के उस लड़के ने अपनी मुट्ठी को जेब में डालकर क्या सीखा ? क्या तुम भी अवसर पड़ने पर ऐसा करोगे ?
६. अपनी किन-किन प्रवृत्तियों को तुम्हें अपने वश में करना चाहिये ?
७. भेड़ का स्वभाव कैसा होता है ?
८. क्या तुम्हें अबू उस्मान का स्वभाव अच्छा लगा है ? यदि नहीं तो क्यों ?

२

साहस

तुम पानी में गिर पड़ते हो। वह विपुल जलराशि तुम्हें भय-भीत नहीं करती। तुम हाथ पाँव मारते हो, साथ ही तैरना सिखाने-वाले अपने शिक्षक को धन्यवाद देते हो। तुम लहरों पर काबू पा लेते हो और बच निकलते हो। तुम बहादुर हो।

तुम सो रहे थे। 'आग' 'आग' की आवाज ने तुम्हें चौंका दिया। तुम पलंग से कूद पड़ते हो; सामने तुम्हें अग्नि की लाल लाल लपटें दिखाई देती हैं। तुम उस घातक भय से त्रस्त नहीं होते। धुएँ, चिनगारियों और लपटों के बीच में से होकर तुम भाग निकलते हो और अपने आपको बचा लेते हो। यह साहस का काम है।

बहुत दिन हुए मैं इंगलैण्ड में बच्चों का एक स्कूल देखने गई थी। वहाँ तीन से सात वर्ष तक के छात्र थे। उनमें लड़के -लड़कियाँ दोनों थे। वे सब बुनने, चित्रकारी करने, कहानी सुनने-सुनाने, गाने आदि में लगे हुए थे।

उनके अध्यापक ने मुझसे कहा —"हम अब अग्नि से बचने का अभ्यास करेंगे। सचमुच आग नहीं लगी है, पर बच्चों को यह सिखाया जा रहा है कि किस प्रकार खतरे का संकेत पाते ही झटपट उठकर भाग जाना चाहिये।"

उसने सीटी दी। उसी दम बच्चों ने अपनी पुस्तकें, पेंसिलें और बुनने की सलाइयाँ छोड़ दीं और उठकर खड़े हो गये। दूसरे संकेत पर सब, एक के पीछे एक, बाहर खुले में आ गये। कुछ ही

क्षणों में श्रेणी खाली हो गई। उन छोटे बच्चों नें आग के खतरे का सामना करना और साहसी बनना सीखा था।

तुम किसकी रक्षा के लिये तैरे थे? अपनी रक्षा के लिये।

तुम किसको बचाने के लिये आग की लपटों में से गुजरे थे? अपने आपको बचाने के लिए।

बच्चों ने किसके बचाव के लिये आग के भय का सामना किया था? अपने बचाव के लिये।

प्रत्येक अवस्था में साहस का प्रदर्शन अपनी रक्षा के लिये किया गया था। क्या यह अनुचित था? बिलकुल नहीं। अपने जीवन की रक्षा करना और उसे बचाने के लिये वीरता का होना सर्वथा उचित है। परन्तु एक वीरता इससे भी बड़ी है: वह वीरता, जो दूसरों की रक्षा के लिये काम में लाई जाती है।

*

मैं तुम्हें माधव की वह कहानी सुनाती हूँ जो भवभूति ने लिखी थी।

माधव मंदिर के बाहर घुटने टेके बैठा था कि उसने एक दुःखभरी आवाज सुनी।

अंदर घुसने के लिये उसने रास्ता पा लिया और देवी चामुंडा के कक्ष में झाँका।

उस भयानक देवी पर बलि चढ़ाने के लिये एक लड़की को वहाँ तैयार रखा गया था। वह बेचारी मालती थी। लड़की निद्रित अवस्था में ही वहाँ लाई गई थी। पुजारी और पुजारिन के पास वह बिल्कुल अकेली थी। पुजारी ने अपना चाकू जिस समय उठाया उस समय वह अपने प्रेमी माधव का ध्यान कर रही थी,—"माधव,

मेरे हृदयेश्वर, मेरी यह प्रार्थना है कि अपनी मृत्यु के बाद भी मैं तुम्हारी याद में रह सकूं। जिनको प्रेम अपनी लंबी और मधुर याद में सुरक्षित रखता है, उनकी मृत्यु नहीं होती।"

एक चीख के साथ वीर माधव उस बलि-गृह में कूद पड़ा। पुजारी के साथ उसका घोर युद्ध हुआ। मालती बच गई।

माधव ने इस साहस का प्रयोग किसके लिये किया था? क्या वह अपने लिये लड़ा था? हाँ, पर उसके साहस का केवल यही कारण नहीं था। उसने दूसरे की रक्षा के लिये भी लड़ाई की थी। उसने एक दुःखी की आर्त पुकार सुनी थी जिसने उसके वीर हृदय को सीधा स्पर्श किया था।

*

यदि तुम जरा सोचो तो तुम्हें इस प्रकार की कितनी ही आँखों देखी घटनाएँ याद आ जायेंगी। तुमने निश्चय ही देखा होगा किस प्रकार एक व्यक्ति भय का संकेत पाते ही किसी दूसरे पुरुष, स्त्री या बच्चे की सहायता के लिये दौड़ पड़ता है।

तुमने समाचार पत्रों में या इतिहास की पुस्तक में इस प्रकार की साहसपूर्ण घटनाओं के बारे में अवश्य पढ़ा होगा। तुमने यह भी सुना होगा कि आग बुझाने वाले जलते हुए घरों से लोगों को किस प्रकार बचाते हैं; किस प्रकार खान में काम करने वाले गहरे कुएँ में उतरकर अपने साथियों को पानी, आग और दम घोंटनेवाली गैस से बचाने के लिये बाहर निकाल लाते हैं; भूचाल से हिलते घरों में से लोग घर की दीवारों के गिरने का डर होते हुए भी दुर्बल व्यक्तियों को बाहर लाने का साहस करते हैं, नहीं तो वे मलवे के नीचे दब कर मर जाते, किस प्रकार नागरिक अपने नगर या मातृभूमि को बचाने के लिये शत्रुओं

का सामना करते हैं, भूख प्यास सहते और चोट तथा मृत्यु तक स्वीकार कर लेते हैं।

इस प्रकार हमने दो प्रकार के साहस देखे हैं——एक अपनी सहायता के लिये काम में लाया जाता है, दूसरा औरों की सहायता के लिये।

*

मैं तुम्हें वीर विभीषण की कहानी सुनाती हूँ। उसने एक ऐसे खतरे का सामना किया था जो मृत्यु के खतरे से भी अधिक बड़ा था। वह एक राजा के क्रोध के सामने डट गया था और उसने उसे एक ऐसी विवेकपूर्ण सलाह दी जिसे देने का किसी और को साहस नहीं हुआ था।

लंका का दैत्य-राजा दस सिरों वाला रावण कहलाता था। वह श्री सीताजी को बलपूर्वक अपने रथ में बैठा, लंका-द्वीप में स्थित अपने महल में ले गया। जिस महल और जिस बाग में राजकुमारी सीता को बंद कर दिया गया था वे बड़े विशाल और मोहक थे, फिर भी वे दुःखी थीं; दिन रात रोती थीं। उन्हें यह भी पता नहीं था कि वे अपने स्वामी राम को पुनः देख सकेंगी या नहीं।

यशस्वी राम को बानर-राज हनुमान से यह पता चल गया कि उनकी स्त्री किस स्थान पर कैद करके रखी गई है। वे अपने सुशील भाई लक्ष्मण तथा वीरों की एक बड़ी सेना के साथ बंदिनी सीता की सहायता के लिये चले।

जब राक्षस-राज रावण को राम के आने का पता चला तो वह डर के मारे काँपने लगा।

अब उसे दो प्रकार की सलाह मिली। उसके राज-दरबारियों का एक झुंड उसके सिंहासन के चारों ओर इकट्ठा हो गया और कहने

लगा—"सब ठीक है महाराज ! डर की कोई बात नहीं। आपने देवताओं और असुरों दोनों को जीत लिया है; राम और उसके साथी हनुमान् के बंदरों को जीतने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

ज्यों ही ये वाचाल सलाहकार राजा के पास से हटे, उसके भाई विभीषण ने वहाँ प्रवेश किया और उसके आगे घुटने टेककर उसके पैर चूमे। फिर उठकर वह सिंहासन की दाईं ओर बैठ गया और बोला—"मेरे भाई, यदि तुम सुख से रहना चाहते हो या लंका के सुन्दर द्वीप के सिंहासन की रक्षा करना चाहते हो, तो सुन्दरी सीता को वापिस कर दो, क्योंकि वह दूसरे की पत्नी है। राम के पास जाओ और उनसे क्षमा माँगो। वे तुम्हें निराश नहीं करेंगे। इतने दुःसाहसी और अभिमानी मत बनो।"

एक और बुद्धिमान् व्यक्ति माल्यवान ने भी यह बात सुनी और वह प्रसन्न हुआ। उसने राक्षस-राज से आग्रह पूर्वक कहा—"अपने भाई की बात पर विचार करो, क्योंकि उसने सत्य कहा है।"

"तुम दोनों ही दुष्ट आशयवाले हो", राजा ने उत्तर दिया, "कारण, तुम मेरे शत्रुओं का पक्ष लेते हो।"

उन दस सिरों की आँखों से ऐसे क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगीं कि माल्यवान तो डर के मारे वहां से भाग गया। पर विभीषण अपने आत्मबल से वहीं डटा रहा और बोला—"राजन्, प्रत्येक मनुष्य के हृदय में विवेक और अविवेक दोनों का निवास है। जिसके हृदय में विवेक होता है उसके लिये जीवन सुखकारक है; यदि वहाँ अविवेक का राज्य हो तो फिर दुःख ही दुःख है। भाई मुझे डर है कि तुम्हारे हृदय में अविवेक अड्डा जमाये हुए है क्योंकि जो तुम्हें बुरा परामर्श देते हैं तुम उन्हीं की बात पर कान धरते हो। वे तुम्हारे सच्चे मित्र नहीं हैं।"

इतना कहकर वह चुप हो गया और उसने राजा के पाँव फिर चूमे।

रावण चिल्लाया—"दुष्ट। तू भी मेरे शत्रुओं में से है ! बस, ऐसे मूर्खतापूर्ण शब्द और मत बोल। ऐसे शब्द तू उन साधु-सन्यासियों को जाकर सुना जो जंगलों में रहते हैं, उससे मत कह जिसने युद्ध में अपने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है"—ऐसा कहते-कहते उसने अपने वीर भाई विभीषण के एक लात जमा दी।

मन में व्यथित होकर विभीषण उठ बैठा और राजा का घर छोड़कर चला गया।

उसके मन में भय नहीं था, इसलिये उसने सब कुछ रावण से साफ-साफ कह दिया था, और अब, जब कि उस दस सिरवाले ने उसकी बात नहीं सुननी चाही तो वह चले जाने के सिवाय और कर भी क्या सकता था।

विभीषण का यह कार्य शारीरिक साहस का कार्य था क्योंकि वह अपने भाई की ठोकरों से भयभीत नहीं हुआ। पर साथ ही यह एक मानसिक साहस का भी कार्य था। वे बातें, जो अन्य राजदरबारियों ने उतना शारीरिक बल रखते हुए भी अपने मुंह से नहीं निकाली थीं, उन्हें राजा से कहने में उसे जरा संकोच नहीं हुआ। यह आत्मा का साहस है जिसे हम नैतिक बल कहते हैं।

*

ऐसा साहस इजराइल के नेता मूसा में भी था। उन्होंने मिस्र देश के राजा फारो से यह माँग की थी कि वह पीड़ित यहूदी लोगों को स्वतन्त्र कर दे।

यही साहस पैगम्बर मोहम्मद में था जिन्होंने अपने धार्मिक

विचार अरबनिवासियों पर प्रकट किये थे। उन लोगों के मृत्यु का डर दिखाने पर भी उन्होंने चुप रहना अस्वीकार कर दिया।

गौतम बुद्ध में भी ऐसा ही साहस था। इन्होंने भारतवासियों को एक नवीन और उच्च मार्ग दिखाया और बोधिवृक्ष के नीचे दुष्ट प्रेतात्माओं द्वारा सताये जाने पर भी डर नहीं माना।

यही साहस ईसामसीह में था जिन्होंने लोगों को उपदेश दिया—"एक दूसरे से प्रेम करो।" न वे यरुशलम के धर्माचार्यों से डरे जिन्हें उनकी यह शिक्षा नहीं भाती थी। और न ही रूम के लोगों से जिन्होंने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया था।

हमने अभी साहस की तीन श्रेणियों, तीन मात्राओं का निरूपण किया है।

शारीरिक साहस, जो अपनी रक्षा के लिये प्रयुक्त होता है।

वह साहस, जो मित्र, पड़ोसी और कष्ट में पड़ी मातृभूमि के लिये दिखाया जाता है।

अन्त में वह नैतिक साहस आता है जो अन्यायी मनुष्यों का सामना करना सिखाता है—चाहे वे कितने ही बलशाली क्यों न हों—और सच्चाई और न्याय की आवाज उनके कानोंतक पहुँचाता है।

*

अलमोड़े के राजा के पहाड़ी प्रदेश पर कुछ आक्रमणकारियों ने धावा बोल दिया। उन्हें मार भगाने के लिये एक नई सेना खड़ी की गई। उसमें जो लोग भरती हुए थे उनमें प्रत्येक को एक बढ़िया तलवार दी गई।

राजा ने आज्ञा दी—"बढ़े चलो।"

उसी दम सबने बड़े जोर शोर से अपनी मियानों में से तलवारें खींच लीं और उन्हें ऊपर हिलाकर वे सब जोर से चिल्लाये।

"यह क्या ?" राजा ने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—"स्वामी, हम तैयार हो रहे हैं जिससे हमारे शत्रु कहीं हमें असावधान पाकर हम पर चढ़ न आवें।"

"तुम उत्तेजित और घबराये हुए हो", राजा ने उनसे कहा, "तुमसे कुछ न होगा। जाओ, सब अपने घर लौट जाओ।"

तुम देखोगे कि राजा ने इस प्रकार तलवारें खींच लेने और शोर-गुल मचाने को जरा महत्व नहीं दिया। वह जानता था कि सच्ची वीरता में हल्ला करने और तलवारें बजाने की आवश्यकता नहीं होती।

इसके विपरीत, निम्नलिखित कहानी में तुम देखोगे कि लोगों ने कितनी शाँतिपूर्वक कार्य किया और किस प्रकार समुद्र के बड़े खतरे के सामने भी वे वीरतापूर्वक डटे रहे।

सन् १९१० के मार्च महीने के अंत में स्काटलैण्ड का एक जहाज आस्ट्रेलिया के यात्रियों को आशा अंतरीप ला रहा था। आकाश में बादल का नाम-निशान नहीं था। समुद्र नीला और शाँत था।

अचानक आस्ट्रेलिया के पश्चिमी किनारेसे छः मील इधर, जहाज एक चट्टान से जा टकराया।

जहाज के सब कर्मचारी एकदम कार्यरत हो गये प्रत्येक अपनी जगह पर डटा था। सीटियाँ बजने लगीं। पर इस हलचल का कारण न तो कुप्रबंध था और न भय।

एक हुक्म गूंज उठा—

"डोंगियाँ उतारो।"

यात्रियों ने सुरक्षा की पेटियाँ पहन लीं।

एक नेत्रहीन व्यक्ति अपने नौकर का हाथ थामे डैक पर आया। सबने उसके लिये रास्ता छोड़ दिया। वह दुर्बल था, इसलिये सब चाहते थे कि पहले उसीको सहायता मिले।

कुछ क्षणों में ही जहाज खाली हो गया, और फिर शीघ्र ही नीचे बैठ गया।

डोंगी पर बैठी हुई एक स्त्री ने गाना शुरू किया। लहरों के शोर-गुल से बीच-बीच में गाने की आवाज दब जाती पर फिर भी जो एक-आध कड़ी मल्लाहों के कान में पड़ती उससे उनकी बाहुओं को बल मिलता था।

"बढ़े चलो, हाँ, बढ़े चलो, मल्लाहो !
मंझधार से किश्ती पार करो, हाँ, बढ़ेचलो मल्लाहो !!"

अंत में दुर्घटना से बचे हुए सब लोग किनारे तक पहुँच गये और दयालु मछुओं ने उन्हें बाहर निकाल लिया।

एक यात्री के भी प्राण नहीं गये। इस प्रकार साढ़े चार सौ व्यक्तियों ने अपने शाँत-संयत स्वभाव से अपनी रक्षा कर ली।

*

अब मैं तुम्हें एक ऐसे शाँतिपूर्ण साहस के विषय में बताती हूँ जो बिना किसी प्रदर्शन और धूम- धड़ाके के कई उपयोगी और भले कार्य करता है।

भारतवर्ष के एक ग्राम के पास से एक गहरी नदी बहती थी। उसमें केवल पाँच सौ घर थे। उन ग्रामवासियों ने अभीतक भगवान् बुद्ध के उपदेश नहीं सुने थे। अतएव बुद्ध ने उनके पास जाने और उन्हें अपना उत्कृष्ट मार्ग बताने का निश्चय किया।

वे एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गये। वृक्ष की शाखाएँ नदी के किनारे तक फैली हुई थीं। ग्रामवासी नदी के परले किनारे
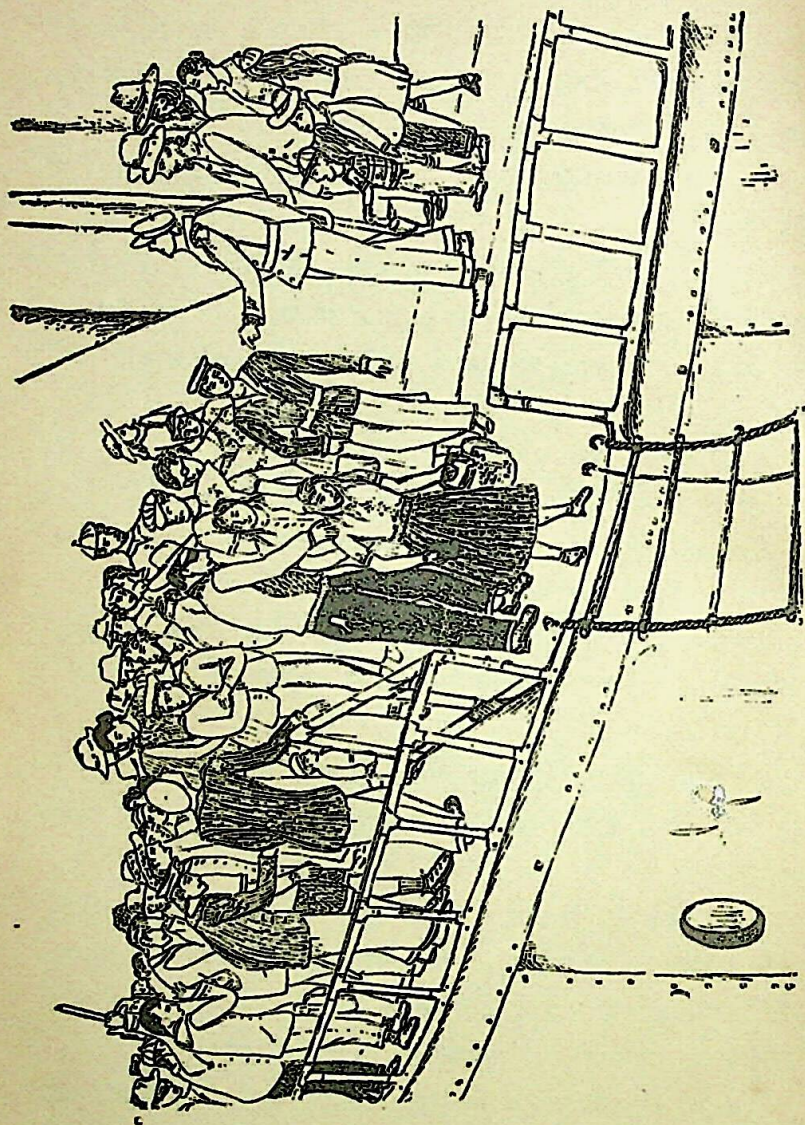
एक नेत्रहीन दुर्बल व्यक्ति के लिये सबने रास्ता छोड़ दिया

पर इकट्ठे हुए। अब बुद्ध ने अपनी आवाज उठाई और उन्हें पवित्रता और प्रेम का संदेश सुनाया। उनके उपदेश चमत्कारपूर्ण ढंग से उस बहते पानी के ऊपर होते हुए नदी के परले किनारे तक पहुँच गये। फिर भी उन लोगों ने उनके वचनों पर विश्वास करना स्वीकार नहीं किया और उनके विरुद्ध बड़बड़ाने लगे।

उनमें एक ऐसा था जो अभी कुछ और जानना चाहता था। उसने बुद्ध के निकट जाना चाहा, पर वहाँ न कोई नौका थी और न पुल। और उस प्राचीन कथा के अनुसार उस मनुष्य ने मन में दृढ़ साहस रखकर नदी के गहरे पानी पर चलना शुरू कर दिया।

इस प्रकार वह गुरु के पास पहुँच गया। उसने उन्हें प्रणाम किया तथा बड़े हर्ष से उनके उपदेश सुने।

उस मनुष्य ने सचमुच नदी पार की थी या नहीं, यह हम नहीं जानते। पर फिर भी उसने इस मार्ग पर चलकर हर तरह से साहस का ही परिचय दिया—ऐसे मार्ग पर जो उन्नति की ओर ले जाता है। इस दृष्टाँत से प्रभावित होकर गाँव के दूसरे लोगों ने भी बुद्ध के उपदेश सुने और उनके अंतःकरण उन अत्यंत शुद्ध विचारों की ओर खुल गये।

*

एक साहस ऐसा है जो नदियाँ लाँघ सकता है। एक ऐसा है जो मनुष्य को न्यायपथ पर ले जाता है। पर सत्य मार्ग पर चलना शुरू करने की अपेक्षा उस पर दृढ़ रहने के लिये जिस साहस की आवश्यकता पड़ती है वह इनसे भी बड़ा है।

मुर्गी और उसके बच्चों का एक दृष्टाँत सुनो।

गौतम बुद्ध अपने शिष्यों से कहते थे कि तुम अपनी ओर से पूरा

प्रयत्न करो और विश्वास रखो कि उन प्रयत्नों का फल तुम्हें मिलेगा ही।

वे कहा करते थे--जिस प्रकार मुर्गी अंडे देकर उन्हें सेती है और इस बात की जरा चिन्ता नहीं करती कि उसके बच्चे अपनी चोंचों से अंडे फोड़कर दिन के प्रकाश में आ जाने में समर्थ होंगे या नहीं, उसी प्रकार तुम्हें भी डरना नहीं चाहिये। सत्य मार्ग पर दृढ़ रहोगे तो तुम भी प्रकाश तक पहुँचोगे।

ठीक रास्ते पर चलना, विपत्तियों और अंधकार और दुःख का सामना करना, सदा आगे, प्रकाश की ओर बढ़ने के प्रयत्न में लगे रहना ही सच्चा साहस है।

*

प्राचीन समय में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा बनारस में राज करता था। उसके एक शत्रु ने, जो किसी और देश का राजा था, अपने हाथी को युद्ध की शिक्षा दी थी।

लड़ाई की घोषणा हो गई। वह विशाल हाथी अपने स्वामी को बनारस की चार-दीवारी तक ले आया।

दीवारों के ऊपर से उन घिरे हुए सैनिकों ने जलते हुए गोलों और गोफन द्वारा फेंके हुए पत्थरों की उन पर झड़ी लगा दी। इस भयानक वर्षा के सामने एक बार तो हाथी पीछे हट गया। पर जिस आदमी ने उसे सधाया था वह उसकी ओर दौड़ा और बोला—

"अरे हस्ती, तू तो वीर है; वीर के समान कार्य कर और फाटक को नीचे पटक दे।"

इन शब्दों से उत्साहित होकर उस विशाल जन्तु ने फाटक पर एक जोर का प्रहार किया, अंदर प्रवेश किया और इस प्रकार राजा को विजय दिलाई।

इसी प्रकार, साहस बाधाओं और कठिनाइयों को जीतकर विजय का पथ प्रशस्त करता है।

*

देखो, किस प्रकार सबको, चाहे वे मनुष्य हों या पशु, बढ़ावे के शब्दों से सहायता पहुँचाई जा सकती है।

मुसलमानों की एक सुन्दर पुस्तक में अबू सईद नाम के एक वीर-हृदय कवि की कहानी आती है, जो इस बात का अच्छा उदाहरण है।

यह जानकर कि वह ज्वर से पीड़ित हैं उसके मित्रगण उसका हाल-चाल पूछने उसके घर गये। कवि के लड़के ने द्वार पर उनका स्वागत किया; उसके होंठों पर मुस्कुराहट थी क्योंकि रोगी पहले से अच्छा था। वे लोग उसके कमरे में पहुँचे और बैठ गये। अपने सदैव के हँसोड़ स्वभाव के अनुसार उसे बोलते सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब गर्मी बढ़ चली थी, उसे नींद आ गई; और सब लोग भी सो गये।

सायंकाल तक सब उठ बैठे। अबू सईद की ओर से अभ्यागतों का जलपान से सत्कार किया गया और कमरे को सुवासित करने के लिये धूपवत्तियाँ जला दीं गईं।

अबू सईद ने कुछ समय तक प्रार्थना की, और फिर उठकर एक छोटी सी स्वरचित कविता पढ़नी आरंभ की—

"दुःख के समय निराश न हो, क्योंकि प्रसन्नता की एक घड़ी तेरे सारे दुःख-दर्द भगा देगी।

मरुभूमि की तेज गर्म हवा बह रही है, पर वह ठण्डे समीर में बदल सकती है।

काली घटा उमड़ रही है, पर वह जल-प्रलय करने से पहले ही हट सकती है।

आग लग सकती है, पर तुम्हारे संदूकों और पेटियों को छुए बगैर बुझ भी सकती है।

शोक आता है, पर चला जाता है। इसलिये जब विपत्ति आवे धैर्य न छोड़ो।

समय सब चमत्कारों से वड़ा है। ईश्वर की कृपा पर भरोसा रखते हुए तुम्हें सदा अपने कल्याण की आशा करनी चाहिये।"

इस आशा से भरी हुई सुन्दर कविता को सुनकर सब प्रसन्नता और बल अनुभव करते हुए अपने अपने घर लौट गये। इस प्रकार एक रोगी मित्र ने अपने स्वस्थ मित्रों की सहायता की।

यह सच है कि जो लोग स्वयं साहसी होते हैं वे ही दूसरों को साहस बँधा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक जलती मोमबत्ती अपनी लौ से दूसरी मोमबत्तियों को जला सकती है।

वीर बालको और बालिकाओ, तुमने यह कहानी पढ़ी है। तुम दूसरों को साहस बँधाना सीखो और स्वयं भी साहसी बनो।

प्रश्न

१. 'साहस' से तुम क्या समझते हो? क्या तुमने कभी कोई साहस का कार्य किया है? यदि हाँ, तो बताओ।
२. साहस कितने प्रकार का है? प्रत्येक के साहस का एक-एक उदाहरण दो।
३. शारीरिक साहस और मानसिक साहस में क्या भेद है? उदाहरण सहित समझाओ।
४. शोर-गुल मचाना या हो-हल्ला करना साहस की निशानी है या दुर्बलता की? उदाहरण से स्पष्ट करो।
५. सच्चे साहस में क्या होता है?
६. अब सईद अपनी कविता में क्या कहते हैं? अपने शब्दों में बताओ।

३

प्रफुल्लता

किसी वर्षाप्रधान देश के एक बड़े शहर में एक दिन तीसरे पहर मैंने सात-आठ गाड़ियाँ बच्चों से भरी देखीं। वे लोग सबेरे ही गाँवों की ओर खेतों में खेल कूद के लिये गये थे। पर वर्षा के कारण उन्हें समय से पहले ही वापिस लौटना पड़ा।

फिर भी बच्चे हँस रहे थे, गा रहे थे और आने जानेवालों की ओर चंचलता भरे इशारे कर रहे थे। इस निराशा के समय भी उन्होंने अपनी प्रसन्नता बनाये रखी थी। एक उदास होता तो दूसरे अपने गानों से उसे प्रफुल्लित कर देते। काम-काज में व्यस्त राहगीर जब उनकी खिलखिलाहट सुनते तो उसक्षण उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानों आसमान की काली घटा कुछ कम गहरी हो गई हो।

खुरासान का एक राजकुमार था। नाम था अमर। खूब ठाट-बाट की उसकी जिन्दगी थी। एक बार जब वह लड़ाई में गया तो उसके रसोईघर के सामान को लेकर तीन सौ ऊँट भी उसके साथ गये। दुर्भाग्य से एक दिन वह खलीफा इस्माइल द्वारा बंदी बना लिया गया, पर दुर्भाग्य भूख को तो नहीं टाल सकता। उसने पास खड़े अपने मुख्य रसोइये को, जो एक भला आदमी था, कहा : भाई, कुछ खाने को तो तैयार कर दे।

उस बेचारे के पास केवल एक माँस का टुकड़ा बचा था। उसने उसे ही देगची में उबलने को रख दिया और भोजन को कुछ अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिये स्वयं किसी साग-सब्जी की खोज में निकला।

इतने में एक कुत्ता वहाँ से गुजरा। माँस की सुगन्धि से आकर्षित हो उसने अपना मुंह देगची में डाल दिया। पर भाप की गर्मी पा
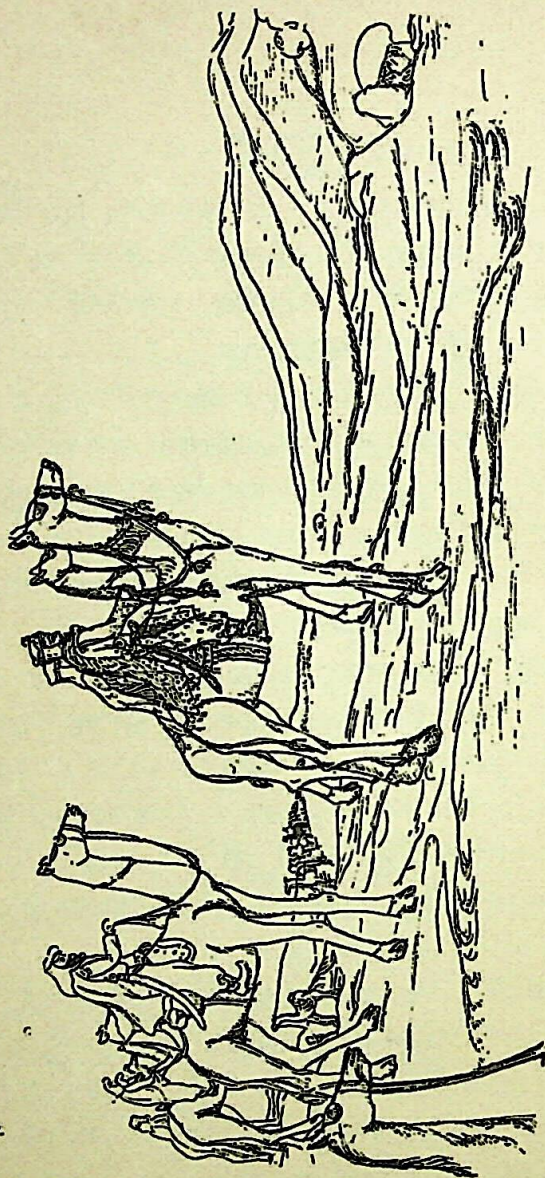
राजकुमार अमर के लिये, ऊँटों द्वारा रसोई का सामान ले जाया जा रहा है।

वह तेजी से और कुछ ऐसे बेढंगे तरीके से पीछे हटा कि देगची उसके गले में अटक गई। अब तो घबराकर वह उसके समेत ही वहाँ से भागा।

अमर ने जब यह देखा तो उच्च स्वर में हँस पड़ा। उसके अफसर ने, जो उसकी चौकसी पर नियुक्त था, उससे पूछा : यह हँसी कैसी? इस दुःख के समय भी तुम हँस रहे हो?

अमर ने तेजी से भागते हुए कुत्ते की ओर इशारा करते हुए कहा : मुझे यह सोचकर हँसी आ रही है कि आज प्रातः तक मेरी रसोई का सामान ले जाने के लिये तीन सौ ऊँटों की आवश्यकता पड़ती थी और अब उसके लिये एक कुत्ता ही काफी है।

अमर को प्रसन्न रहने में एक स्वाद मिलता था यद्यपि दूसरों को प्रसन्न रखने के लिये वह उतना प्रयत्नशील नहीं था। फिर भी उसके विनोदी स्वभाव की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। यदि वह इतनी गंभीर विपत्ति में भी प्रसन्न रह सकता था तो क्या हम मामूली चिंता-फिकर में मुँह पर एक मुस्कराहट भी नहीं ला सकते?

*

फारस देश में एक स्त्री थी जो शहद बेचने का व्यवसाय करती थी। उसकी बोलचाल का ढंग इतना आकर्षक था कि उसकी दूकान के चारों ओर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती थी। इस कहानी को सुनाने वाला कवि कहता है कि यदि वह शहद की जगह विष भी बेचती तो भी लोग उसे शहद समझकर ही उससे खरीद लेते।

एक ओछी प्रकृति वाले मनुष्यने जब देखा कि वह स्त्री इस व्यवसाय से बहुत लाभ उठा रही है तो उसने भी इसी धंधे को अपनाने का निश्चय किया।

दूकान तो उसने खोल ली, पर शहद के सजे सजाये बर्तनों के

पीछे उसकी अपनी आकृति कठोर ही बनी रही। ग्राहकों का स्वागत वह सदा अपनी कुटिल भृकुटि से करता था। इसलिये सब उसकी चीज छोड़ आगे बढ़ जाते थे। कवि आगे कहता है कि एक मक्खी भी उसके शहद के पास फटकने का साहस नहीं करती थी। शाम हो जाती, पर उसके हाथ खाली के खाली ही रहते। एक दिन एक स्त्री उसे देखकर अपने पति से बोली; 'कड़ुआ' मुख शहद को भी कड़ुआ बना देता है।

क्या वह शहद बेचने वाली स्त्री केवल ग्राहकों को आकर्षित करने के लिये ही मुस्कराती थी? हम तो यही सोचते हैं कि उसकी प्रफुल्लता उसके भले स्वभाव का एक अंग थी। संसार में हमारा कार्य केवल बेचना और खरीदना ही नहीं है; हमें यहाँ एक दूसरे को मित्र बनाकर रहना है। उस भली स्त्री के ग्राहक यह जानते थे कि वह एक दूकानदारिन के अतिरिक्त कुछ और भी थी—वह संसार की एक प्रसन्नमुख नागरिक थी।

*

नीचे मैं जिन महापुरुष का हाल बताने लगी हूँ उनकी प्रसन्नता ऐसे प्रवाहित होती थी जैसे एक सुन्दर उद्‌गम से पानी की धारा। इन्हें न लाभ की इच्छा थी, न ग्राहकों की, ये प्रसिद्ध और गौरवशाली राम थे।

राम ने दस शीश और बीस भुजाओं वाले रावण को मारा था। मैं तुम्हें इस कहानी का प्रारम्भ पहले बता चुकी हूँ। यह युद्ध बड़ा भयानक और कई जातियों के बीच में था। हजारों बंदरों और रीछों ने राम की सेवा में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। उनके शत्रु-राक्षसों के शवों के भी ढेर लगे थे। उनका राजा निर्जीव पृथ्वी पर पड़ा था। ओह! उसे मार गिराना कितना कठिन था! वार

पर वार करके रामचन्द्रजी ने उसके दस सिरों और बीस भुजाओं को काटा था, पर शीघ्र ही वे पुनः उत्पन्न हो जाते थे ! उनको लगातार, एक के बाद एक , इतने अंग काटने पड़े कि अंत में ऐसा प्रतीत होने लगा मानों आकाश से सिर और भुजाओं की वर्षा हो रही हो ।

जब यह भयानक युद्ध समाप्त हुआ तो वे सब बंदर और रीछ जो लड़ाई में मारे गये थे जीवित कर दिये गये । वे ऐसे उठ खड़े हुए मानों एक बड़ी सेना आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी हो । यशस्वी राम का व्यवहार विजय के बाद सरल और शाँत था । उन्होंने अपने विश्वस्त मित्रों की ओर अपनी कृपा पूर्ण दृष्टि उठाई ।

तभी रावण के सिंहासन का उत्तराधिकारी विभीषण इन वीरों के लिये, जिन्होंने इतने साहस से युद्ध में भाग लिया था, एक गाड़ी भर बढ़िया गहने और कपड़े ले आया । राम बोले : सुनो मित्र विभीषण ! तुम ऊपर हवा में चढ़ जाओ और वहाँ से अपनी इस भेंट को सेना के सम्मुख बिखेर दो ।

विभीषण ने ऐसा ही किया । अपने रथ को वह ऊपर ले गया और वहीं से उसने वे सब चमचमाते गहने और सुन्दर रंग-बिरंगे कपड़े नीचे की ओर डाल दिये ।

अब क्या था । सब रीछ और बन्दर एक दूसरे को धकेलते हुए इस गिरती हुई निधि के ऊपर टूट पड़े । एक अच्छा-खासा तमाशा खड़ा हो गया ।

राम और उनकी पत्नी सीता खिलखिलाकर हँस पड़े । उन का भाई लक्ष्मण भी अपनी हँसी न रोक सका ।

केवल वीर पुरुष ही इस प्रकार हँस सकते हैं । शुद्ध और सरल आनन्द से बढ़कर प्रसन्नता देने वाली और कोई वस्तु नहीं है । वास्तव में 'प्रसन्नता' और 'साहस' अपने मूल रूप में एक ही हैं ।

जीवन के कठिन क्षणों में हार्दिक प्रसन्नता बनाये रखना ही एक प्रकार का साहस है।

निश्चय ही हर समय हँसने की आवश्यकता नहीं, पर प्रफुल्लता, धीरता और शाँति जितनी मात्रा में हों उतना ही अच्छा है; कितनी उपयोगी वस्तुएँ हैं ये! यह इन्हीं का प्रभाव है कि माँ गृह को बच्चों के लिये आनन्दमय बना देती है; एक नर्स रोग को शीघ्र दूर करने में सफल होती है, स्वामी अपने सेवकों का काम सरल कर देता है; एक श्रमजीवी अपने साथियों में सद्भावना उत्पन्न करता है; यात्री अपने संगियों को उनकी कड़ी यात्रा में सुख पहुँचाता है; एक नागरिक अन्य नागरिकों के हृदयों में आशा को बनाये रखता है।

और तुम, प्रसन्नचित्त बालको और बालिकाओ, अपनी प्रफुल्लता से क्या नहीं कर सकते ?

प्रश्न

१. 'प्रफुल्लता' से तुम क्या समझते हो ? "बच्चों की हँसी सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानो आसमान की काली घटा कुछ कम गहरी हो गई हो" इसका अर्थ अपने शब्दों में बताओ।
२. खुरासान के राजकुमार अमर की कहानी में तुम्हें कौन सी बात सबसे अच्छी लगी ? वह क्यों हँसा था ?
३. लोग कहानी की उस स्त्री से ही क्यों शहद खरीदते थे, दूसरे मनुष्य से क्यों नहीं ?
४. 'कड़ुआ मुख शहद को भी कड़ुआ बना देता है—इसका क्या अर्थ है ?

४

आत्म-निर्भरता

प्राचीन समय के अरब निवासियों में हातिमताई अपनी उदारता और दानशीलता के लिये बहुत प्रसिद्ध था।

एक वार उसके मित्रों ने उससे पूछा, "क्या तुम्हें कभी कोई ऐसा व्यक्ति भी मिला है जो तुमसे भी श्रेष्ठ हो ?

उसने उत्तर दिया, "हाँ।"

"वह कौन था ?"

"एक वार मैंने एक दावत दी थी जिसके लिये चालीस ऊँट हलाल किये गये थे। जो चाहे इस दावत में शरीक हो सकता था। मैं अपने साथ कुछ सरदारों को लेकर दूर के मेहमानों को आमंत्रित करने चला। रास्ते में मुझे एक लकड़हारा मिला जिसने अभी-अभी कँटीली झाड़ी की लकड़ियों का एक गट्ठर काटना समाप्त किया था। उसकी जीविका का साधन यही था। उसे गरीब देख मैंने उससे पूछा---हातिमताई इतनी दावतें देता है, तुम उनमें क्यों नहीं जाते ? उसने उत्तर में कहा---जो अपनी रोटी आप कमाते हैं उनको हातिमताई की उदारता की आवश्यकता नहीं।"

हातिमताई ने ऐसा क्यों कहा कि वह लकड़हारा उससे बड़ा मनुष्य है ?

दूसरों को भेंट-स्वरूप कुछ दे-देने से स्वयं काम करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेना उसे कहीं अच्छा लगा, क्योंकि लेनेवाले को इसके लिये न तो परिश्रम करना पड़ता है और न ही वह इसके लिये कोई त्याग करता है। इतना ही नहीं, यह कार्य औरों को भी दूसरों पर निर्भर रहने का पाठ पढ़ाता है।
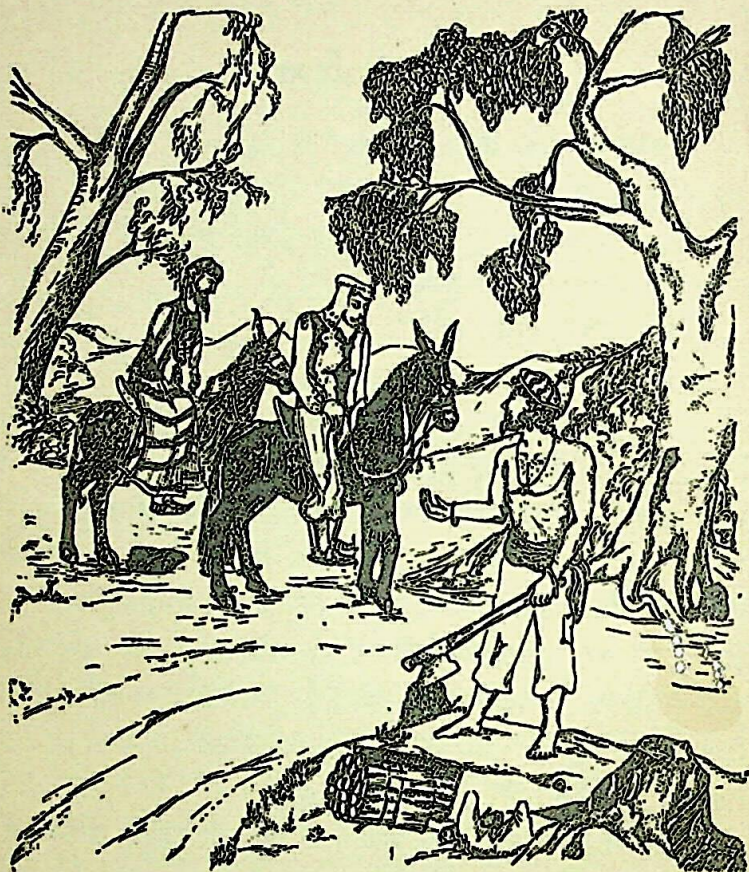
लकड़हारे ने हातिमताई से कहा—"जो अपनी रोटी आप कमाते हैं उनको हातिमताई की उदारता की आवश्यकता नहीं है"।

हां, यह तो स्वाभाविक ही है कि एक मित्र दूसरे मित्र को उपहार देता है। यह भी ठीक है कि बलवान् बाहुओं को दीन और दुःखी मनुष्यों की साहयता के लिये आगे बढ़ना चाहिये। पर एक सबल और भले-चंगे मनुष्य के लिये अपने हाथ से ही काम करना उचित है, लेने के लिये दूसरों के आगे हाथ पसारना ठीक नहीं। हाँ, जो लोग अपना जीवन सत्य की खोज और गंभीर चिंतन में व्यतीत करते हों उन पर हम यह दोष नहीं लगा सकते।

लकड़हारे का चरित्र कितना भी भला हो पर फारस के राजकुमार गुश्तास्प का चरित्र उससे भी महान् है। उसकी कहानी यों है।

प्राचीन समय में गुश्तास्प नाम का एक राजकुमार था। उसके पिता ने उसे राजसिंहासन का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया; इससे वह बहुत दुःखी हुआ और अपनी जन्मभूमि छोड़कर पश्चिम की ओर चल पड़ा। अकेला और भूखा-प्यासा गुश्तास्प समझ गया कि जीविका के लिये अब उसे केवल अपने परिश्रम पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। जिस देश में वह पहुंचा उसके मुखिया के पास जाकर उसने कहा—मैं एक निपुण लेखक हूँ, आप कृपा करके मुझे किसी मुंशी के पद पर नियुक्त कर दें। मुखिया को उस समय किसी लेखक की आवश्यकता नहीं थी, इसलिये गुश्तास्प से उसने कुछ दिन ठहरने के लिए कहा। पर वह इतना भूखा था कि प्रतीक्षा करना उसके लिये संभव नहीं था। वहाँ से चलकर वह कुछ ऊँटवालों के पास गया और उनसे कोई काम देने के लिये प्रार्थना की। उन्हें भी किसी नए आदमी की जरूरत नहीं थी, पर उसे अत्यन्त गरीब देखकर उन्होंने उसे कुछ खाने को दे दिया।

थोड़ी दूर आगे चलकर गुश्तास्प एक लुहार की दूकान के सामने ठहर गया और लुहार से कुछ काम माँगा।

लुहार ने कहा—अच्छी बात है, तुम मुझे इस लोहे के पीटने में सहायता दे सकते हो; और उसने एक हथौड़ा गुश्तास्प के हाथ में थमा दिया ।

राजकुमार में बड़ा बल था, उसने वह भारी हथौड़ा उठा लिया और ऐसा जमाया कि पहली चोट में ही अहरन के दो टुकड़े हो गये । गुस्से में भरे हुए लुहार ने उसे उसी समय दरवाजे का रास्ता दिखा दिया ।

अत्यन्त गंभीर व्यथा और शोक में डूबा हुआ गुश्तास्प फिर काम की खोज में निकल पड़ा । जिस तरफ वह जाता अनुपयोगी ही साबित होता । अन्त में वह एक किसान से मिला जो अनाज के खेत में काम कर रहा था । उसे गुश्ताप की अवस्था पर दया आ गई और उसने उसके रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया ।

एक दिन यह खबर फैली कि रूम के राजा की लड़की के विवाह-योग्य हो जाने के कारण राजवंश के सब युवक राजमहल में आमंत्रित किये गये हैं । गुश्तास्प ने तभी वहाँ जाने का निश्चय किया । सबके बीच में वह भी मेज के सामने जा बैठा । राजकुमारी किताबिन ने उसे देखा और वह उस पर रीझ गई; अपने अनुराग के चिह्नस्वरूप उसने गुलाब के फूलों का एक गुच्छा उसे भेंट में दिया ।

राजा को गुश्तास्प की दरिद्रता के प्रति तीव्र घृणा हुई, पर वह उससे अपनी लड़की का विवाह रोक देने का साहस नहीं कर सकता था; परन्तु ज्यों ही विवाह हो चुका उसने उन्हें अपने महल से निकाल दिया । वे दोनों जंगल में रहने के लिये चल पड़े, वहाँ उन्होंने नदी के पास ही अपने लिये एक झोपड़ी बना ली ।

गुश्तास्प बड़ा अच्छा शिकारी था । प्रतिदिन वह नाव द्वारा
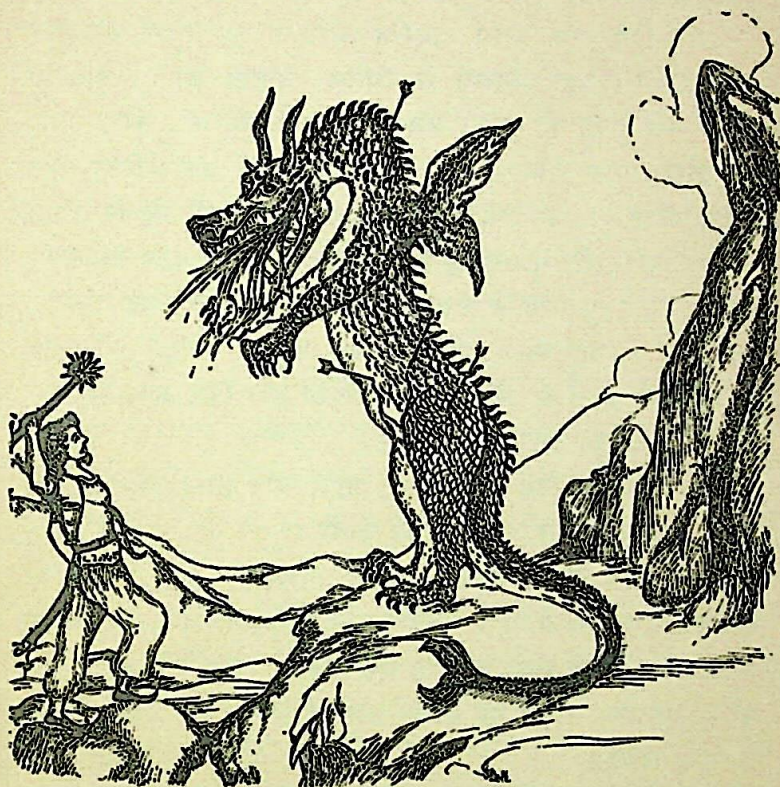
गुश्तास्प ने बरछी के सिरे पर पैनी कीलों से जड़ी हुई चाकुओं की गद लगाई और उसे ड्रेगॉन (अजगर) के मुंह में घुसेड़ दिया

नदी पार जाता और वहाँ से कभी बारहसिंगा और कभी जंगली गधा पकड़ लाता । अपने शिकार में से आधा वह नाववाले को देता और बाकी अपनी स्त्री के पास ले जाता ।

एक दिन नाव वाला मावरीन नाम के एक युवक को अपने साथ लाया । वह गुश्तास्प से मिलना चाहता था । मावरीन बोला—मैं राजा की दूसरी लड़की, तुम्हारी स्त्री की छोटी वहन, से विवाह करना चाहता हूँ । राजा के देश में एक भेड़िया बहुत उपद्रव करता है । जव तक मैं उसे मार न दूं उस लड़की से मेरी शादी नहीं हो सकती और मुझे समझ में नहीं आता कि मैं यह काम कैसे करूँ ।

शिकारी गुश्तास्प ने उत्तर दिया—तुम्हारे लिये यह काम मैं कर दूँगा । वह जंगल की ओर चल पड़ा । भेड़िये को देखते ही उसने दो तीरों से उसे नीचे गिरा दिया और फिर अपने शिकारी चाकू से उसका सिर काट लिया ।

राजा मृत भेड़िये को देखने आया और उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी दूसरी लड़की मावरीन को दे दी ।

कुछ दिन बाद नाववाला अहरुन नामक एक और युवक को गुश्तास्प के पास ले आया । वह राजा की तीसरी लड़की को ब्याहना चाहता था, परन्तु इससे पूर्व उसे एक अजगर (ड्रैगॉन) को मारना था । गुश्तास्प ने इस नए दुष्कर कार्य को करने के लिये उसे भी वचन दे दिया ।

उसने चाकुओं की एक गेंद बनाई, जिसके चारों ओर पैनी कीलें जड़ी थीं । अब वह अजगर (ड्रैगाँन) की खोज में निकला । जंगल में जाकर गुश्तास्प ने देखा कि अजगर की साँसों में से आग निकल रही है । उसने उसकी देह में वहुत से तीर मारे जब कि वह स्वयं उसके पंजे से बचने के लिये इधर-उधर कूद जाता था । अब उसने एक बरछी के

सिरे पर वह चाकुओं की एक गेंद लगाई और उसे (ड्रेगाँन) अजगर के खुले मुंह में घुसेड़ दिया। अजगर(ड्रेगाँन) ने अपना मुंह बन्द कर लिया और वह गिर पड़ा। तब राजकुमार ने अपनी तलवार से उसका काम तमाम कर दिया।

इस प्रकार अहरुन को राजा की तीसरी लड़की मिल गई।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि शीघ्र ही यह वीर राजकुमार अपने पिता के बाद फारस का राजा बना। गुश्तास्प के राज्यकाल में ही संत जरदुश्त या ज़ोरोस्टर ने फारस वासियों को अहुर्मज्द का धर्म सिखाया था। अहुर्मज्द प्रकाश, सूर्य और अग्नि, सच्चाई और न्याय का देवता माना जाता है।

*

यह तो तुमने देख ही लिया है कि गुश्तास्प को संसार में न तो एकबारगी स्थान ही मिला और न काम। उसने कई कामों के लिये प्रयत्न किये पर उसे असफलता ही हाथ लगी। यही नहीं, शुरू में तो वह कई लोगों की नाराजगी का कारण बना, जिसका दृष्टान्त वह भला लुहार है।

परंतु अन्त में उसे अपना उपयुक्त पद प्राप्त हो गया और इस तरह वह अपनी प्रजा पर बुद्धिमानी से शासन करके उसकी सहायता कर सकने में समर्थ हुआ।

गुश्तास्प लकड़हारे से ठीक इसी बात में श्रेष्ठ था कि उसने दूसरों की सहायता की थी, जब कि लकड़हारा अपने लिये ही काम करके संतुष्ट था। गुश्तास्प उदार हातिमताई से भी श्रेष्ठ था, क्योंकि उसकी तरह अपना अतिरिक्त धन दे देने के स्थान पर फारस के राजकुमार ने अपना बाहुबल दिया और दूसरों की भलाई के लिये अपने प्राण तक खतरे में डाल दिये।

जो मनुष्य अपने ऊपर निर्भर रह कर , अपनी शक्ति से न केवल अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है पर साथ ही अपने पड़ोसियों की समृद्धि और भलाई का भी ध्यान रखता है वह जितना सम्मान का पात्र है, उतना और कोई नहीं ।

हम उस पिता के आगे नतमस्तक हैं जो, चाहे वह इंजीनियर हो या लकड़हारा, लेखक हो या मजदूर, व्यवसायी, लुहार, अनुसंधायक कोई भी हो , अपने प्रत्येक कार्य से अपने सुख-आराम के साथ-साथ अपने बच्चों के सुख आराम का कारण बनता है । हम उस कर्मी का भी आदर करते हैं जो अपने और साथ ही अपने साथियों के लाभ के लिये साझे के कारखाने, दूकानें, कंपनियाँ और सिंडिकेट चलाता है और प्रत्येक को अपने अधिकारों की माँग पेश करने का अवसर देता है । इस प्रकार एक अकेले व्यक्ति की दुर्बल और अनुनयपूर्ण आवाज के स्थान पर समूह की शक्तिशाली आवाज सुनाई पड़ती है ।

ये संघ श्रमजीवियों को अपनी शक्ति पर भरोसा रखना और एक दूसरे की सहायता करना भी सिखाते हैं ।

विद्यार्थियो ! तुम भी अध्यापक द्वारा दिये हुए काम में अपनी बुद्धि लगाकर उसे बढ़ाना सीखो । ज्ञान की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए तुम सदा अपने ऐसे साथी की सहायता करने का अवसर खोजो जो तुम से कम चतुर और कम तेज हो ।

परियों की कहानियों में केवल एक नाम लेने से, लैम्प को रगड़ने तथा लकड़ी घुमाने से जिन प्रकट हो जाते हैं । वे मनुष्यों को हवा में उड़ा ले जाते हैं, पलक मारते महल खड़े कर देते हैं और जमीन में से घुड़सवारों और हाथियों की सेना निकाल लाते हैं ।

परन्तु निजी प्रयत्न इनसे भी बड़े चमत्कार उत्पन्न करता है । यह पृथ्वी को उतम शस्य से ढक देता है, जंगली जानवरों को वश में

कर लेता है, पर्वतों को भेद देता है, बाँधों, पुलों और नगरों का निर्माण करता है, जल में जहाज को तथा आकाश में वायुयान को गति देता है; सबकी भलाई तथा सुरक्षा के इतने साधन उपस्थित करता है।

इसी प्रयत्न के द्वारा मनुष्य अधिक सज्जन, अधिक योग्य और अधिक दयाशील बनता है। सच्ची उन्नति वास्तव में इसी में है।

प्रश्न

१. हातिमताई अपने समय का प्रसिद्ध व्यक्ति क्यों था ?
२. वह उस लकड़हारे को अपने से अधिक महान क्यों कहता है ?
३. किस गुण के कारण गुश्तास्प राजा बन सका था ?
४. गुश्तास्प उदार हातिमताई से किस बात में श्रेष्ठ था ?
५. विद्यार्थी अपनी बुद्धि को किस प्रकार समृद्ध बना सकता है ?
६. 'निजी प्रयत्न' से तुम क्या समझते हो ? इससे संसार में क्या-क्या काम हो सकते हैं ?

धैर्य और अध्यवसाय

पंजाब के निवासियों का एक गाना है—

सदा ना बागीं बुलबुल बोले,
सदा ना बाग बहाराँ।
सदा ना राज खुशी दे होंदे,
सदा ना मजलिस याराँ।

इस गीत का भाव यह है कि हम सदैव संतुष्ट रहने की आशा नहीं कर सकते तथा धीरज एक अत्यंत उपयोगी गुण है। हमारे जीवन में ऐसे दिन कम नहीं आते जब कि हम इस गुण का अनुशीलन न कर सकते हों।

तुम्हें एक अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति से कुछ काम है। तुम उसके घर जाते हो। जहाँ पहले से ही कई मिलने वाले उपस्थित हैं; मिलने से पहले वह तुमसे बड़ी लंबी प्रतीक्षा करवाता है। पर तुम वहाँ शाँतिपूर्वक, शायद कई घंटे तक, ठहरे रहते हो। तुम धैर्यवान हो।

किसी और समय, जिससे तुम मिलने जाते हो वह अपने घर से अनुपस्थित होता है। अगले दिन तुम फिर जाते हो पर उसका द्वार तुम्हें अब भी बंद मिलता है। तीसरी बार तुम फिर पहुँचते हो। अबके वह बीमार है, मिल नहीं सकता। कुछ दिन बाद तुम उसके घर का रास्ता फिर पकड़ते हो। यदि तब भी कोई नई घटना उससे मिलने से तुम्हें रोक देती है, तो भी तुम निरुत्साहित नहीं होते, और तुम तब तक अपने प्रयत्न में लगे रहते हो जब तक तुम उससे मिल नहीं लेते। इस प्रकार का धैर्य अध्यवसाय कहलाता है।
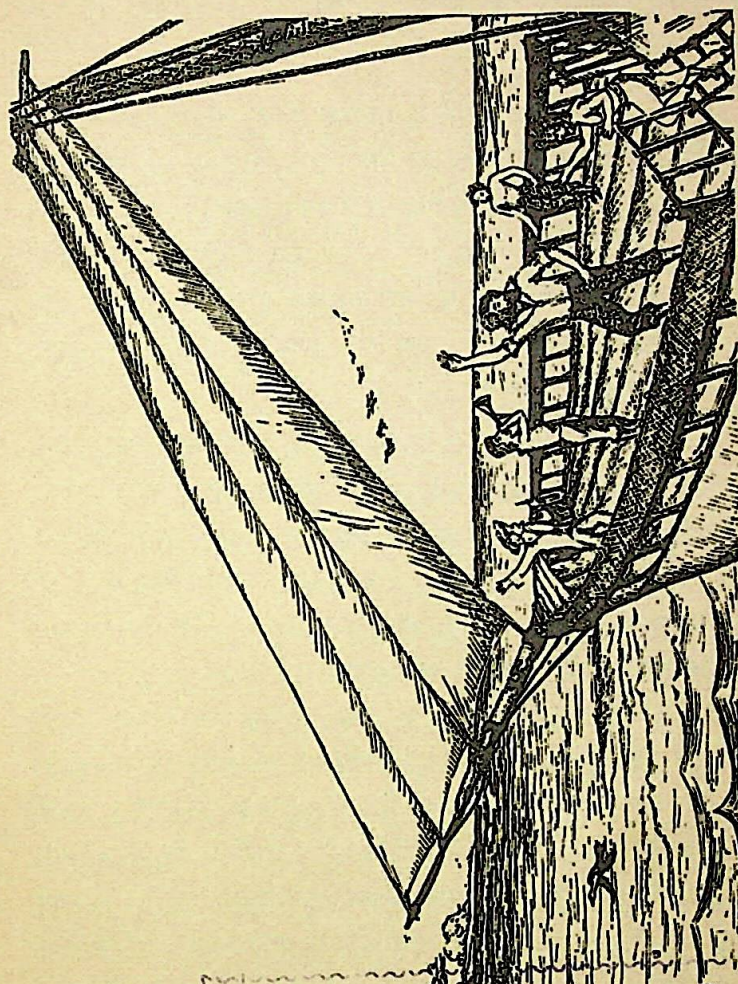
कोलम्बस अपनी धुन में दृढ़ रहा और उसने एक नये महाद्वीप (अमेरिका) को खोज निकाला।

अध्यवसाय--यह सक्रिय धैर्य है, अर्थात् गतिशील धैर्य ।

*

जेनेवा का रहनेवाला प्रसिद्ध नाविक कोलम्बस स्पेन से जहाज लेकर पश्चिम के अज्ञात समुद्रों को पार करने निकला। दिन बीत गये, सप्ताह बीत गये, अपने साथियों की बड़बड़ाहट को सहते हुए वह एक नई पृथ्वी को खोज निकालने की धुन में दृढ़ रहा। विलंब हुए, कई कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं पर जब तक वह अमरीका के किनारे के द्वीपों तक नहीं पहुँचा, उसने दम नहीं लिया। इस प्रकार उसने एक नया महाद्वीप खोज निकाला।

वह अपने साथियों से किस बात की आशा रखता था ? वह उनसे केवल यह चाहता था कि वे धैर्य रखें। उनका कर्त्तव्य केवल इतना था कि वे उस पर भरोसा रखें और नम्रतापूर्वक उसकी आज्ञा के अधीन रहें। पर इस लक्ष्य-प्राप्ति के लिये स्वयं उसके अन्दर किस वस्तु का होना आवश्यक था ? उसमें उस अक्षुण्ण उत्साह और गंभीर लगन की आवश्यकता थी जिसे हम अध्यवसाय कहते हैं।

प्रसिद्ध कुंभकार बर्नार्ड पालिसी (Bernard Pālissy) की इच्छा थी कि प्राचीन समय के बरतनों पर जो चमकीले रंगों द्वारा मीने का काम होता था उसके लुप्त भेद को वह ढूंढ़ निकाले। अपनी इस खोज को उसने बिना थके महीनों और वर्षों जारी रखा। इन रंगों को खोज निकालने के उसके प्रयत्न बहुत समय तक तो निष्फल ही रहे। ज़ो कुछ पूंजी उसके पास थी वह सब उसने इसी कार्य के अर्पण कर दी। रात-दिन वह अपनी भट्ठी के सामने नई-नई क्रियाओं द्वारा बरतनों को बनाने और उनको पकाने के सतत प्रयत्नों में लगा रहता था। इस काम में उसकी सहायता करना तो दूर उसे कोई

उत्साहित भी नहीं करता था, उल्टे उसके सब पड़ोसी और मित्र उसे सनकी समझते थे। उसकी स्त्री तक उसके कार्यों के लिये उसे बुरा भला कहती थी।

धन के अभाव में उसे कई बार अपनी खोज रोक देनी पड़ी पर ज्योंही वह इन परीक्षणों के लिये अपने आपको समर्थ पाता, त्योंही एक नए उत्साह से वह फिर उनमें जुट जाता। अन्त में एक दिन भट्ठी को तपाने के लिये उसके घर में ईंधन नहीं रहा। घर के लोगों की चीख-पुकार की जरा भी परवा न करते हुए उसने अपना सारा लकड़ी का सामान एक एक करके आग में झोंक दिया। जब सब कुछ जल गया तो उसने भट्ठी खोली। क्या देखता है कि जिन रंगों की खोज में उसने इतने वर्ष लगाये हैं वे सब वहाँ चमक रहे हैं। अंत में यही चीज उसकी यशप्राप्ति का कारण बनी।

उसकी स्त्री तथा उसके मित्रों में किस वस्तु का अभाव था जिससे कि वे उसे बिना कष्ट पहुँचाये तथा उसके काम को अधिक कठिन बनाये उसकी सफलता की घड़ी की प्रतीक्षा नहीं कर सके थे? वह सिवाय धैर्य के और कुछ नहीं था। और वह कौनसी ऐसी वस्तु थी जिसका उसके अपने अंदर अभाव नहीं था, जिसने कभी उसे धोखा नहीं दिया और जिसने अंत में उसे कठिनाइयों और व्यंग्योक्तियों पर विजय प्राप्त करवाई? यह थी अध्यवसाय की शक्ति, वह शक्ति जो सब शक्तियों से अधिक बलवती है।

इस संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो अध्यवसाय का रास्ता रोक सके। बड़े से बड़े काम भी सदा छोटे-छोटे अथक प्रयत्नों के ही परिणाम होते हैं।

ऐसी बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं जो वर्षा की बूंदों के लगातार एक ही जगह पड़ने से पूरी की पूरी घिस गई हैं।

रेत का एक कण अपने आप में कोई शक्तिशाली वस्तु नहीं पर ये ही रेत के कण जब इकट्ठे हो जाते हैं तो एक टीला बन जाता है और इस प्रकार वे समुद्र की लहरों तक को रोक देते हैं।

जब तुम प्राकृतिक इतिहास पढ़ते हो तो तुम्हें बताया जाता है कि किस प्रकार अति क्षुद्र जीव एक के ऊपर एक जमा होकर समुद्र में (मूंगे के) पहाड़ खड़े कर देते हैं और उनके अनवरत प्रयत्नों से पानी के ऊपर सुन्दर सुन्दर द्वीप और द्वीप-समूह निकल आते हैं।

तो क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारे नन्हें नन्हें अनवरत प्रयत्न महान् कार्यों को साधित नहीं कर सकते ?

*

प्रसिद्ध दार्शनिक शंकर जिनके नाम ने मलाबार प्रदेश का मुख उज्ज्वल किया है अब से लगभग बारह सौ वर्ष पहले हुए थे। उन्होंने बचपन में ही संन्यासी बनने का निश्चय कर लिया था।

उनकी इच्छा के महत्व को स्वीकार करते हुए भी उनकी माता ने बहुत समय तक उन्हें इस प्रकार का जीवन ग्रहण करने की आज्ञा नहीं दी।

एक दिन माता और पुत्र दोनों नदी में स्नान करने के लिये गये। नदी में प्रवेश करते ही शंकर को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका पाँव किसी ग्राह ने पकड़ लिया है। मृत्यु निकट जान पड़ी, पर उस कठिन समय में भी उस वीर बालक के अन्दर वही महान् आकाँक्षा प्रबल थी। वह चिल्लाकर अपनी माँ से बोला—"मैं तो गया। एक ग्राह ने मुझे पकड़ लिया है। कम से कम मुझे संन्यासी होकर तो मरने दो।"

माँ ने निराश होकर रोते-रोते कहा—"अच्छा, अच्छा, मेरे बेटे।"

शंकर का सौभाग्य ! उस समय उनमें ऐसा बल आ गया कि पाँव को छुड़ाकर वे अपने आपको किनारे तक ले आने में समर्थ हो गये ।

उसके बाद उनकी आयु के साथ-साथ उनका ज्ञान भी बढ़ता गया । वे एक गुरु बन गये । अपने अद्भुत जीवन की अन्तिम घड़ी तक वे ज्ञानोपदेश के महान् कार्य में लगे रहे ।

*

भारत से प्रेम रखनेवाले सभी लोग महाभारत के सुन्दर काव्य से तो परिचित होंगे ही । कई शताब्दियाँ पहले यह संस्कृत में लिखा गया था । अभी कुछ वर्ष पहले तक बिना संस्कृत जाने कोई यूरोपीय इसे पढ़ नहीं सकता था और संस्कृत जानने वाले यूरोपीय कम ही थे । इसलिए यूरोप की भाषाओं में से किसी एक में इसका अनुवाद करना आवश्यक था ।

बाबू प्रतापचंद्र राय ने इस काम के प्रति अपने आपको अर्पित कर देने का निश्चय किया । अपने देश में ही उन्हें एक ऐसे विद्वान् मित्र मिल गये जो इस संस्कृत की पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद कर सकते थे । इनका नाम था किशोरीमोहन गाँगुली । इस पुस्तक के एक के बाद एक कई खंड प्रकाशित हुए ।

बारह वर्ष तक प्रतापचंद्र राय इस काम में लगे रहे । उन्होंने अपनी सारी पूंजी इस पुस्तक के प्रकाशन में लगा दी और जब उनके अपने पास कुछ न बचा तो देश के भिन्न भिन्न भागों में वे घूमें । जिस किसीने कुछ देने में रुचि दिखाई उन सब से उन्होंने सहायता माँगी । इन सहायता देनेवालों में राजा भी थे और किसान भी, विद्वान् भी थे और अनपढ़ भी; यूरोप और अमरीका के मित्र भी नहीं छूटे थे ।

इन्हीं यात्राओं में से किसी एक में उन्हें एक ऐसे घातक ज्वर ने

घर दबाया कि वही उनकी मृत्यु का कारण बन गया। रोग की अवस्था में भी उनके सारे विचार इस कार्य की समाप्ति पर केंद्रित थे। उस समय भी जब कष्ट के कारण वे अधिक बातचीत नहीं कर सकते थे उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—"यह पुस्तक समाप्त होनी ही चाहिए। मेरे क्रिया कर्म पर खर्च मत करना, क्योंकि पुस्तक के प्रकाशन के लिये पैसे की आवश्यकता पड़ेगी। तुम भी यथा संभव सादगी से रहना जिससे महाभारत के लिये पैसा बच सके।"

वे भारत और उसके महाकाव्य के लिये प्रेम से भरा हृदय लिये हुए मरे।

उनकी विधवा पत्नी सुन्दरीबाला राय ने पूरी सच्चाई के साथ उस महत् इच्छा का पालन किया। एक वर्ष में अनुवादक महोदय ने कार्य पूरा कर दिया और महाभारत की ग्यारह जिल्दें यूरोपीय जनता के सम्मुख आ गईं। अब वह उस अद्भुत महाकाव्य के अठारह पर्वों को पढ़कर उसका महत्व अनुभव कर सकती थी। महाभारत को पढ़ कर वह निश्चय ही भारत के गंभीर विचारकों तथा प्राचीन कवियों की महान् प्रतिभा और ज्ञान का मान करना सीखेगी।

ये हैं उन सब के पुरुषार्थ के परिणाम, जो प्रतापचन्द्र राय तथा अन्य योग्य व्यक्तियों की तरह अनवरत प्रयत्न करना जानते हैं।

और तुम, भले बालको, क्या ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की पंक्ति में खड़े होना नहीं चाहते जो अच्छे कार्यों से कभी नहीं थकते और कार्य को पूरा किये विना उसे कभी बीच में नहीं छोड़ते ?

इस विस्तृत संसार में करने योग्य अच्छे कार्यों का अभाव नहीं है और न ही उन अच्छे व्यक्तियों का अभाव है जो उनको हाथ में ले सकते हैं; पर जिसका प्रायः अभाव होता है वह है अध्यवसाय; केवल वही उन्हें कार्य-सिद्धि तक ले जा सकता है।

प्रश्न

१. इस कहानी के आरम्भ में जो पंजाबी गाना दिया गया है उसका क्या अर्थ है ? अपने शब्दों में बताओ।
२. 'सक्रिय धैर्य' से तुम क्या अभिप्राय लेते हो ?
३. यदि कोलम्बस में धैर्य न होता तो क्या परिणाम होता ?
४. धैर्य और अध्यवसाय में क्या भेद हैं ? उदाहरण देकर समझाओ।
५. बर्नार्ड पालिसी ने किन गुणों के कारण अपने कार्य में सफलता पाई ?
६. शंकर ने किस प्रकार अपनी माँ से सन्यासी बनने की अनुमति प्राप्त की ? वे पीछे प्रसिद्ध क्यों हुए ?
७. श्री प्रतापचन्द्र राय के जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?
८. कौन सा गुण होने से आदमी जीवन में सफलता पा सकता है ?

६

सादा जीवन

पैगम्बर मोहम्मद, जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही अरब निवासियों के शिक्षण में लगा दिया था, न तो धनी थे और न ही उनके पास सुख आराम का कोई साधन था। एक रात वे एक सख्त चटाई पर सो रहे थे, जागने पर उनकी देह पर उसकी रस्सियों और गाँठों के निशान पाये गये। एक मित्र से न रहा गया। वह बोला—"हे ईश्वर के दूत, यह शैय्या आप के लिये अत्यन्त कठोर है। यदि आपने मुझे आज्ञा दी होती तो में बड़ी प्रसन्नता से आपके लिये एक अत्यन्त कोमल शैय्या तैयार कर देता; इससे आपका विश्राम अधिक सुखकर हो जाता।"

पैगम्बर ने उत्तर दिया—"भाई, कोमल शैय्या मेरे लिये नहीं है। मुझे इस संसार में कुछ कार्य करना हैं। जब मेरे शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है तो मैं उसे विश्राम देता हूँ, पर उस घुड़सवार की तरह, जो अपने घोड़े को धूप की तेजी से बचाने के लिये पलभर किसी पेड़ की छाया में बाँध देता है और फिर आगे चल देता है।"

पैगम्बर का कहना था कि उन्हें संसार में कुछ कार्य करना है। इसीलिये उनका उच्च जीवन एक सादा जीवन बन गया था। अपने ध्येय में विश्वास रखते हुए वे सब अरबवासियों को शिक्षा देना चाहते थे। आमोद-प्रमोद के साधनों में उनकी जरा भी आसक्ति न थी

क्योंकि उनका हृदय उच्चतर विचारों की ओर झुका हुआ था।

*

निम्नलिखित अरबी कहानी से हमें पता चलेगा कि एक स्वस्थ आत्मा को कोई भी वस्तु उतना संतोष नहीं पहुंचा सकती जितना कि सादा जीवन पहुंचाता है।

मैंजूं खल्ब-वंश की लड़की थी। अपने जीवन के प्रारंभिक वर्ष उसने मरुभूमि के बीच तंबू में व्यतीत किये थे।

संयोगवश उसका विवाह खलीफा मुआविया के साथ हो गया। खलीफा के पास बहुत धन था, दास-दासियाँ भी प्रचुर संख्या में थे, पर उसके साथ रहकर वह प्रसन्न नहीं थी।

चारों ओर भरपूर धन-ऐश्वर्य होने पर भी उसके मन को शांति नहीं थी। जब कभी वह अकेली होती अरबी भाषा के कुछ स्वरचित पद मधुर स्वर में गाने लगती। वह गाती :—

"ऊँट की खाल से बने हुए भूरे वस्त्र मेरी आँखों में इन राजसी वस्त्रों से कहीं सुन्दर हैं।

रहने के लिये मरुभूमि का तंबू इस महल के विशाल कमरों से अधिक सुखकर है।

छोटे छोटे बछेड़े जो अरब में तंबू के चारों ओर फुदकते फिरते हैं, इन पुष्ट और कीमती साज से सजे हुए खच्चरों से अधिक फुर्तीले हैं।

चौकसी पर रहनेवाले कुत्ते की आवाज, जो किसी नए आदमी को देखकर भौंक उठता है, महल के चौकीदार की हाथीदाँत से बनी हुई तुरही की आवाज से अधिक सुरीली है।"

ये पंक्तियाँ जब खलीफा के कान में पड़ीं तो उसने अपनी स्त्री

को महल से निकाल दिया। वह कवयित्री अपने संबंधियों के पास लौट आई। उस ऐश्यर्ययुक्त महल को वह अब कभी नहीं देख सकेगी इससे वह प्रसन्न ही हुई, क्योंकि वह उसे हमेशा उदास कर दिया करता था।

*

प्रायः सभी देशों में अब लोग यह समझने लगे हैं कि सादा जीवन ऐसे जीवन से, जो फिजूलखर्ची, दिखावे और मिथ्याभिमान पर अवलम्बित है, कहीं अधिक वांछनीय है।

अधिकाधिक संख्या में अब पुरुष और स्त्रियाँ बहुमूल्य वस्तुएं खरीदने की क्षमता रखते हुए भी यह सोचने लगे हैं कि उनके धन का और अच्छा उपयोग कैसे हो सकता है। वे बढ़िया खाने के स्थान पर स्वास्थ्यप्रद भोजन का व्यवहार पसंद करने लगे हैं। बड़े-बड़े भारी चटकीले-भड़कीले सामान के स्थान पर वे अपने मकानों को हलके, सुन्दर और पायदार सामान से सजाना अधिक अच्छा समझते हैं, क्योंकि यह ऊपरी तड़क-भड़क सिवाय दिखावे के और किसी काम में नहीं आती।

संसार की उन्नति में अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले श्रेष्ठ और उत्साही मनुष्य सदा से ही शाँति और मितव्ययता से रहना जानते थे। ऐसा जीवन शरीर को स्वस्थ रखता है और मनुष्य को सर्वहित के कार्य में अधिकाधिक भाग लेने के योग्य बनाता है। ऐसे उदाहरणों से उन लोगों के सिर लज्जा से झुक जाते हैं जिन्होंने अपने चारों ओर निरर्थक चीजें जमा-कर रखी हैं और स्वयं तो वे अपने वस्त्रों, घर की साज-सामग्री तथा अपने नौकर-चाकरों के दास बन ही जाते हैं।

बिना गढ़ा खोदे टीला नहीं खड़ा किया जा सकता; एक का धन-ऐश्वर्य प्राय: दूसरों की दुर्दशा का कारण होता है। इस संसार में बहुत से सुन्दर, महान तथा उपयोगी काम करने को पड़े हैं; फिर यह कैसे संभव है कि ऐसे लोग जिनमें बुद्धि का सर्वथा अभाव नहीं है अपने समय, पैसे और विचार को अनुपयोगी कार्यों में खर्च कर दें।

*

संत फराँस्वा (Saint Francois) का मुख्य काम था सत्य जीवन का प्रचार। यह काम वे धन की लालसा से नहीं करते थे। उनका अपना जीवन सादा था और उनकी सबसे बड़ी प्रसन्नता इसमें थी कि वे अपने उदाहरण और उपदेशों से लोगों को शिक्षा दें। उन्हें जो कुछ खाने को मिल जाता वे उसी में संतुष्ट रहते। एक दिन वे अपने साथी मातेओ (Mattco) के साथ एक शहर के पास से गुजरे। मातेओ भिक्षा के लिए एक सड़क पर हो लिये और फराँस्वा दूसरी पर। मातेओ लंबे और सुन्दर व्यक्ति थे जब कि फरांस्वा छोटे कद के तथा देखने में भी ऐसे वैसे ही थे। लोगों ने मातेओ को खूब भिक्षा दी पर बेचारे फराँस्वा थोड़े से अन्न के अतिरिक्त और कुछ इकट्ठा न कर सके।

शाम को शहर के दरवाजे के बाहर दोनों मिले। पास में ही बहती हुई निर्मल नदी के किनारे एक बड़ी चट्टान पर वे बैठ गए और उन्होंने अपनी सारे दिन की कमाई अपने सामने रखी। फरांस्वा प्रफुल्लित मुख से बोल उठे—"भाई मातेओ, हमें ऐसे बढ़िया भोज की आशा तो नहीं थी!" मातेओ ने उत्तर दिया—"रोटी के इन थोड़े से टुकड़ों में आपको भोज दिखाई दे रहा है। हमारे पास न तो कोई मेज है, न छुरी, न काँटा, और न ही कोई नौकर है।"

"भूख लगने पर सुन्दर चट्टान की मेज पर रखी रोटी हो और प्यास लगने पर नदी का निर्मल जल पीने के लिये हो, यह क्या किसी भोज से कम है ?" फराँस्वा ने उत्तर दिया ।

इसका यह अर्थ नहीं कि गरीब मनुष्य सदा अपनी दीन अवस्था में ही संतोष मानकर उसी में पड़ा रहे, वरन् इससे यह प्रकट होता है कि किस प्रकार वाह्‌य धन और सामग्रियों के अभाव में सुन्दर आत्माओं के अंदर रहनेवाले संतोष और प्रसन्नता-रूपी धन उस स्थूल धन का स्थान ले लेते हैं ।

*

इसमें संदेह नहीं कि सादा रहन-सहन किसी भी व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाता । पर धन और ऐश्वर्य के बाहुल्य के बारे में यह नही कहा जा सकता । निरर्थक चीजों का संग्रह प्रायः मनुष्य के लिये क्लेश का कारण बन जाता है ।

प्रसिद्ध बादशाह अकबर के राज्यकाल में आगरे में बनारसीदास नाम के एक जैन साधु रहते थे । एक दिन बादशाह ने उन्हें अपने महल में बुलवाया और उनसे कहा—"आप जो चाहें मुझसे माँग लें । आप संत पुरुष हैं इसलिये आपकी सब इच्छाएँ पूरी की जायँगी ।"

"परब्रह्म ने मुझे आवश्यकता से अधिक दिया हुआ है", संत ने उत्तर दिया ।

अकबर ने अनुरोध किया —"कुछ तो मांगिये ।"

"तब राजन्, मैं यही मांगता हूँ कि तुम मुझे फिर कभी अपने महल में न बुलाना क्योंकि मैं अपना सारा समय भगवान् के कार्य में लगाना चाहता हूँ ।"

"अच्छा, ऐसा ही होगा, पर अब आप से मेरी भी एक प्रार्थना है।"

"कहो राजन् !"

"मुझे कोई ऐसी सलाह दीजिये जिसे में सदा याद रख सकूं और उस पर आचरण कर सक।"

बनारसीदास ने एक क्षण सोचकर उत्तर दिया--"इस बात का सदा ध्यान रखना कि तुम्हारा भोजन शुद्ध और स्वास्थ्य-प्रद हो, विशेषकर रात में मांस और पेय पदार्थ का विशेष ध्यान रखना।"

"मैं आपकी सलाह कभी नहीं भूलूंगा", बादशाह ने साधु को विश्वास दिलाया।

अवश्य ही वह सलाह उत्तम थी क्योंकि शुद्ध सात्विक भोजन और पेय पदार्थ शरीर को स्वस्थ बनाते हैं। ऐसा शरीर ही शुद्ध विचार और पवित्र जीवन का क्षेत्र बनने के योग्य हो सकता है।

जिस दिन वह साधु अकबर के पास आया था वह रोजे का दिन था। अकबर को उस दिन रात्रि के पिछले पहर में भोजन करना था। रसोइये शाम को ही भोजन तैयार कर चुके थे। सोने चाँदी के थालों में सब सामग्री परोसकर वे रोजा खुलने के समय की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे।

अभी रात कुछ बाकी थी जब अकबर के सामने भोजन परोसा गया। उसे खाने की जल्दी थी पर फिर भी उसे एकदम बनारसी दास के वचन याद आ गये--"मांस और पेय पदार्थ का विशेष ध्यान रखना।" उसने ध्यानपूर्वक अपने सामने रखे थाल को देखा। सैकड़ों भूरी चींटियाँ उस पर चल रही थीं। नौकरों के बहुत सावधानी

बरतने पर भी चींटियाँ बादशाह के भोजन पर चढ़ गईं थीं और वह अब खाने के काम का नहीं रहा था।

अकबर ने थाल वापिस भेज दिया, पर इस घटना ने उसके मन में बनारसीदास की सलाह का महत्त्व और भी अधिक बढ़ा दिया।
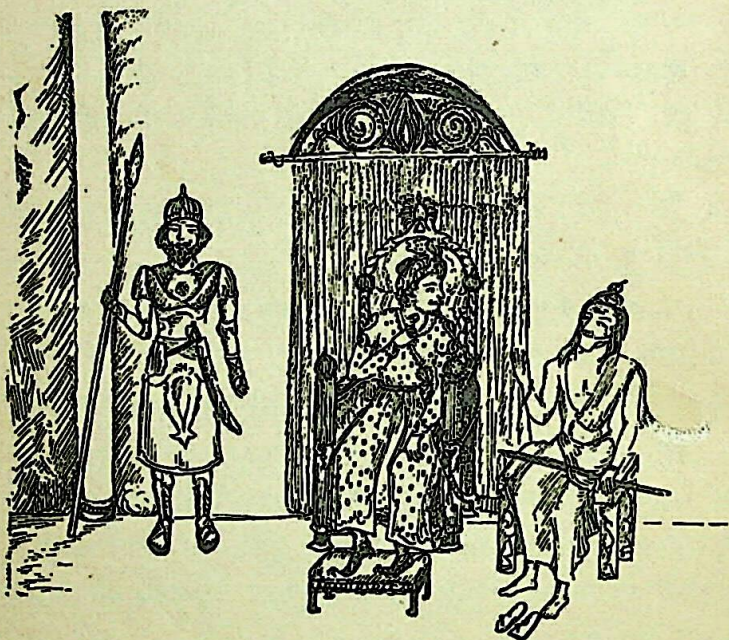
बादशाह अकबर को बनारसीदास की सलाह

यह तो तुम समझ गये होगें कि बनारसीदास ने अकबर को केवल भूरी चींटियों से ही नहीं वरन् उन सब भोजनों से सावधान रहने के लिये कहा था जो शरीर और मन के लिये अहितकर हैं।

अपथ्य भोजन से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

जो लोग जानबूझ कर दूषित भोज्य पदार्थ बेचते हैं वे अपने नागरिकों के प्रति भारी अपराध करते हैं। दूषित पदार्थों से हमारा मतलब केवल बासी और सड़े-गले पदार्थों से नहीं है वरन् उन सब पदार्थों से है जिन्हें खाने से किसी प्रकार की हानि हो।

उपर्युक्त कहानी में यह नहीं कहा गया कि अकबर ने अपने प्याले में भी चींटियां देखी थीं पर बनारसीदास ने उसे पेय पदार्थ की ओर से भी सावधान रहने के लिये कहा था।

यह सच है कि चमकते हुए प्याले आँखों को लुभावने लगते हैं; उनमें का तरल पदार्थ भी रुचिकर और तरोताजगी देनेवाला प्रतीत होता है, फिर भी वह होता है मनुष्य के लिये अत्यन्त हानिकारक। पर इनमें से भी सबसे अधिक हानिकारक होते हैं सुरा-पात्र।

*

पैगम्बर मोहम्मद की शिक्षा थी कि मदिरापान तथा जूआ खेलना पाप हैं। इसलिये जो लोग कुरान के वचनों पर श्रद्धा रखते हैं उन्हें इन दोनों चीजों से बचना चाहिये।

पर संसार में सर्वत्र ऐसे लोग हैं जो मदिरापान को उचित समझते हैं। हम उनके मत का मान करते हैं पर ये लोग यह कभी नहीं कहते कि मदिरा न पीना भी कोई अवगुण है।

कुछ लोग मदिरापान को बुरा समझते हैं तो कुछ अच्छा भी समझते हैं, पर ऐसा कोई भी नहीं है जो इसका न पीना दोष माने। इसका पीना लाभदायक है या नहीं यह बात विवादास्पद हो सकती है पर इसका न पीना हानिकारक है यह बात किसी के मुंह से नहीं निकलेगी।

और यह तो प्रत्येक मानता है कि इसके न पीने से पैसे की बचत होती है।

प्रायः सभी देशों में इससे बचने के लिये समितियाँ बनाई गई हैं। इनके सदस्य मदिरा न छूने की प्रतिज्ञा करते हैं। कई शहरों में तो इसके बेचने तक की मनाही कर दी गई है।

इसके विपरीत कुछ स्थानों में, जहाँ अब तक लोग शराब को जानते तक नहीं थे, इसका व्यवहार होने लगा है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष में, जहाँ शताब्दियों से इसका व्यवहार नहीं होता था, यह अब प्रचलित हो गई है। प्राचीन कथाओं में वर्णित किसी भी राक्षस से यह कम भयानक नहीं है। वे दुर्दान्त राक्षस तो केवल शरीर को ही हानि पहुंचा सकते थे पर यह शराब तो विचार-शक्ति के साथ-साथ चरित्र को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देने की शक्ति रखती है। सबसे पहले तो यह शरीर को ही हानि पहुंचाती है। जो माता-पिता इसका अधिक प्रयोग करते हैं उनके बच्चों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। यह बुद्धि का नाश करती है और जिन्हें मनुष्यमात्र का सेवक बनना था उन लोगों को यह अपना दास बना लेती है। हम सब में से प्रत्येक को मनुष्यमात्र का सेवक बनना चाहिये। यदि हम अपने खान-पान से अपने मन और शरीर को दुर्बल बना लेंगे तो हम अयोग्य सेवक ही बन पायेंगे, ऐसे सेवक जो अपना कार्य करने में असमर्थ होंगे।

उस सिपाही का क्या होगा, जिसकी बाँह कट गई है? वह नाविक किस काम का जिसकी नाव का मस्तूल खो गया हो? वह घुड़सवार कैसा जिसका घोड़ा लँगड़ा हो गया है? और वह मनुष्य क्या करेगा जिसका अपनी अमूल्य शक्तियों पर से अधिकार उठ गया है? वह

पशु से भी गया बीता है। पशु भी वही खाता पीता है जो उसके लिये हितकर होता है।

रोमन कवि वरजिल (Virgil) को खेत में रहना-सहना बहुत पसंद था। पुष्ट और तगड़े बैल उन्हें विशेष प्रिय थे, क्योंकि वे खेतों में हल चलाकर उन्हें फसल के लिये तैयार करते हैं। बैल का शरीर खूब मजबूत होता है; उसके पुट्ठे बड़े पुष्ट होते हैं। वर्षों लगातार कठोर काम करने का वह अभ्यासी होता है।

वरजिल कहते हैं :—

"वह शराब और दावतों से सदा दूर रहता है। घास फूस खाता है और वहती नदियों और निर्मल झरनों के पानी से अपनी प्यास बुझाता है। कोई चिन्ता उसकी सुखद नींद में बाधा नहीं पहुँचाती।"

बलवान् होने के लिये संयमी बनो।

यदि तुम्हें कोई कहे कि दुर्बल बनो तो तुम उससे रुष्ट हो जाओगे।

खान-पान का संयम जहाँ बलवानों की शक्ति की वृद्धि करता है, वहाँ दुर्बलों की शक्ति की रक्षा भी करता है।

बनारसीदास की सलाह कभी मत भूलो :

"खाद्य का ध्यान रखो।

पेय का ध्यान रखो।"

प्रश्न

१. 'सादा जीवन' से तुम क्या समझते हो ? पैगम्बर मुहम्मद का जीवन सादा क्यों था ?

२. 'उच्च जीवन', 'सादे विचार' से क्या अभिप्राय है ?

३. दास-दासियों से भरपूर ऐश्वर्य युक्त महल में रहकर भी मंजू प्रसन्न क्यों नहीं थी ?

४. एक का धन-ऐश्वर्य प्रायः दूसरों की दुर्दशा का कारण होता है—इसका क्या अर्थ है ?

५. शान्त और संयत जीवन को क्यों श्रेष्ठ कहा जाता है ?

६. संसार में सबसे बड़ा धन कौन-सा है ?

७. किस तरह का खाना-पीना स्वास्थ्य के लिये हितकर है ?

८. 'बलवान होने के लिये संयमी बनो'—इससे तुम क्या समझते हो ?

७

दूरदर्शिता

ज्योंही उस हिन्दू युवक ने तीर छोड़ा और लक्ष्य-वेध किया त्योंही एक बोल उठा---'वाह खूब !'

किसी ने कहा---"हाँ, पर अभी तो दिन का प्रकाश है। यह धनुर्धारी निशाना ठीक लगा सकता है, पर दशरथ जैसा होशियार यह नहीं है।"

---"तो फिर दशरथ क्या कर सकता है ?

---"वह शब्द-वेधी है।"

---"अर्थात् ?"

---"वह शब्द के सहारे निशाना लगाता है।"

---"तुम्हारे कहने का तात्पर्य ?"

---"वह अंधेरे में तीर चला सकता है। रात में जंगल में जाकर वह आहट सुनता है। जानवर के पैरों या पंखों की आवाज से जब उसे पता चल जाता है कि उसे किस शिकार को मारना है तो वह तीर चला देता है और इस प्रकार अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, मानों खुले प्रकाश में निशाना साधा हो।"

इस प्रकार अयोध्या के राजकुमार दशरथ की कीर्त्ति चारों ओर फैल गई थी।

अपनी इस शब्द-बेधी चातुरी पर उसे गर्व था। लोगों के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर वह प्रसन्न हो उठता था। साँझ होते ही वह अकेला अपने रथ में बैठकर, शिकार की खोज में, घने जंगल की ओर चल देता। कभी उसे जंगली भैंसे या नदी पर पानी

पीने के लिये आनेवाले हाथी के पैरों की आवाज सुनाई देती तो कभी हरिण की हल्की या भेड़िये की सतर्क पदध्वनि ।

एक दिन रात के समय जब वह झाड़ियों में लेटा हुआ पत्तियों की खड़खड़ाहट और पानीके झरझर शब्द को ध्यान से सुन रहा था, उसे अचानक तालाब के किनारे किसी के हिलने-डुलने की आवाज सुनाई दी। अंधकार में उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, पर दशरथ तो शब्द-वेधी था न ! उसके लिये ध्वनि ही काफी थी। उसने सोचा निश्चय ही हाथी होगा और उसने तीर छोड़ दिया। तभी एक दर्दभरी आवाज गूंज उठी।

—"वचाओ-बचाओ ! किसी ने मुझे मार डाला।" दशरथ के हाथ से धनुष-वाण छूट गया; एक प्रबल सिहरन उसके सारे शरीर में दौड़ गई। "क्या कर दिया मैंने ? जंगली जानवर के धोखे में किसी मनुष्य को घायल कर दिया क्या ?" जंगल को चीरता हुआ वह तालाब की ओर झपटा। तालाब के किनारे एक युवक रक्त में लथपथ पड़ा था, बाल बिखरे थे, उसके हाथ में एक घड़ा था जिसे भरने के लिये वह वहाँ आया था।

"तात," वह कराह उठा, "क्या तुमन ही यह घातक वाण छोड़ा था ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। मैं एक ऋषिकुमार हूँ, मेरे वृद्ध माता-पिता अँधे हैं। उनकी देख-रेख तथा उनकी सब आवश्यकताओं की पूर्त्ति मैं ही करता हूँ। मैं उन्हीं के लिये पानी लेने आया था, पर अब मैं उनकी सेवा नहीं कर सकूंगा। इस रास्ते से तुम उनकी कुटिया की ओर जाओ और जो कुछ हुआ है उन्हें बता दो। पर जाने से पहले मेरी छाती में से यह तीर निकालते जाओ, इससे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है।"

दशरथ ने घाव में से तीर खींच लिया। युवक ने अन्तिम श्वास लिया और प्राण छोड़ दिये।

राजकुमार ने वह घड़ा पानी से भरा और मृतक द्वारा बताये गये रास्ते पर वह चल पड़ा। जैसे ही वह कुटिया के समीप पहुँचा, पिता बोले—

"मेरे बच्चे, आज इतनी देर क्यों लगाई? क्या वहाँ तालाब में स्नान करने लगे थे? हम डर रहे थे कि कहीं तुम किसी विपत्ति में न पड़ गये हो। पर तुम उत्तर क्यों नहीं देते?"

कांपती आवाज में दशरथ बोला—

"महात्मन्, मै आपका पुत्र नहीं हूँ। मैं एक क्षत्रिय हूँ। मुझे अब तक अपनी धनुर्विद्या पर बड़ा गर्व था। रात मैं शिकार की खोज में बैठा था, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि तालाब के किनारे पर हाथी के पानी पीने की आवाज हो रही है; मैंने तीर छोड़ दिया। अफसोस! वह तीर आपके पुत्र के जा लगा। कहिये, कहिये, किस प्रकार मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करूँ?"

दोनों—वृद्ध और वृद्धा—हाय-हाय कहकर विलाप कर उठे। उन्होंने राजकुमार से उस स्थान पर उन्हें ले चलने के लिये कहा जहाँ उनका एकलौता पुत्र पड़ा था। शव के पास पहुँचकर उन्होंने मंत्र-पाठ किया और उस पर जल छिड़का। तब ऋषि बोले—

'सुन दशरथ! तेरे दोष से हम आज अपने प्यारे पुत्र के लिये आँसू बहा रहे हैं। एक दिन तू भी अपने प्यारे पुत्र के लिये विलाप करेगा। बहुत वर्षों के बाद ऐसा होगा, पर यह दण्ड तुझे अवश्य मिलेगा।'

शवदाह के लिये उन्होंने चिता तैयार की, फिर स्वयं भी उसमें बैठकर जल मरे।

समय बीत चला। दशरथ अयोध्या का राजा हो गया और कौशल्या से उसका विवाह हुआ। फिर उसके यशस्वी राम जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ।

सारी प्रजा राम को प्यार करती थी। जब उनके युवराज बनने की बात हुई तो देवताओं ने मंथरा के द्वारा कैकेयी की बुद्धि फेर दी और उसके कुचक्र के कारण सज्जन राम को चौदह वर्ष के लिये वन भेज दिया गया।

तब दशरथ ने पुत्र के वियोग में उसी प्रकार विलाप किया जैसे उन वृद्ध माता पिता ने अपने युवक पुत्र के लिये जंगल में विलाप किया था जिसने आधी रात के समय तालाब के किनारे प्राण छोड़े थे।

दशरथ को एक समय अपनी विद्या पर इतना घमंड हो गया था कि उसमें न तो दूरदर्शिता रही और न ही उसने कभी यही सोचा कि अंधकार में वह किसी मनुष्य को भी घायल कर सकता है। अपनी चातुरी के लिये ऐसा मूर्खतापूर्ण घमंड होने से तो उसके लिये यह अच्छा होता कि वह केवल दिन के प्रकाश में ही तीर चलाने का अभ्यास करता। यह ठीक है कि वह किसी को हानि पहुँचाना नहीं चाहता था, पर वह था अदूरदर्शी।

*

एक बार दो बूढ़े गिद्ध बड़े कष्ट की अवस्था में थे। बनारस के एक सौदागर को उनपर दया आई और वह उन्हें एक सूखी जगह में ले गया। उन्हें गर्मी पहुँचाने के लिये उसने आग जलाई और मृत जानवरों को जहाँ जलाया जाता है वहाँ से माँस के टुकड़े लाकरउनका उदरपोषण किया।

जब वर्षा ऋतु आई, वे गिद्ध पर्वतों की ओर उड़ गये।
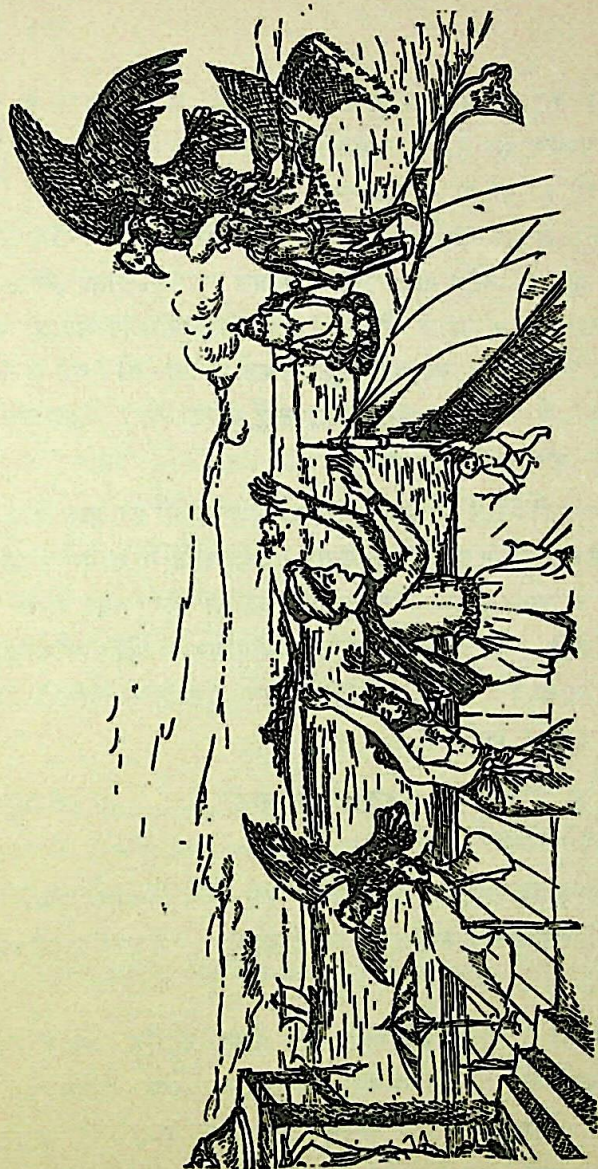
सौदागर और गिद्ध

वे अब खूब स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गये थे। बनारस के सौदागर के उपकार का बदला चुकाने के लिये उन्होंने निश्चय किया कि जैसे भी हो सकेगा वे कुछ वस्त्र इकट्ठे करके अपने दयालु मित्र को देंगे। वे एक घर से दूसरे घर, एक गाँव से दूसरे गाँव उड़ते हुए जाते और जो वस्त्र बाहर हवा में सूखने को पड़ा होता उसे उठा लाते और सौदागर के घर में छोड़ आते। सौदागर उनके सदाशय का मान तो करता था पर उन चुराये हुए कपड़ों को न तो वह अपने किसी व्यवहार में लाता था और न ही उन्हें बेचता था। वह उन्हें केवल संभाल कर रख देता था।

इन दो गिद्धों को पकड़ने के लिये सब स्थानों पर जाल लगाये गये। एक दिन उनमें से एक पकड़ा गया। वह राजा के सामने लाया गया। राजा ने उससे पूछा—"तुम मेरी प्रजा की चोरी क्यों करते हो?"

पक्षी ने उत्तर दिया—"एक सौदागर ने मेरी और मेरे भाई की जान बचाई थी। उसी का ऋण चुकाने के लिये हमने ये वस्त्र इकट्ठे किये हैं।"

अब सौदागर से पूछताछ की बारी आई। वह भी राजा के सामने हाजिर हुआ। वह बोला—

"स्वामी, गिद्धों ने सचमुच ही मुझे बहुत से वस्त्र लाकर दिये हैं, पर मैंने सबको एक स्थान पर रख दिया है। मैं उन्हें उनके स्वामियों को लौटाने के लिये तैयार हूँ।"

राजा ने गिद्धों को क्षमा कर दिया, क्योंकि उन्होंने यह कार्य प्रत्युपकार के लिये किया था, पर उनमें विचार-शक्ति का अभाव था। सौदागर को भी इसके लिए कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा क्योंकि उसमें वह दूरदृष्टि थी।

*

जापानियों के घरों में दूरदर्शिता का विचार मूर्तिमान रूप में देखने में आता है ।

उनके एक मंदिर में कमल के फूल पर ध्यानावस्था में बैठे हुए महात्मा बुद्ध की मूर्ति है । उनके सामने तीन छोटे-छोटे बंदर हैं । एक के हाथ अपनी आँखों पर हैं, दूसरे के अपने कानों पर, और तीसरे ने तो हाथों से अपना मुंह ही बन्द कर रखा है । इन तीनों बंदरों का अर्थ क्या तुम जानते हो ? पहला अपनी चेष्टा से कह रहा है—"मैं बुरी और भद्दी चीजें नहीं देखता ।" दूसरा कहता है—'मैं इन्हें नहीं सुनता ।" और तीसरा —"मैं इन्हें नहीं कहता ।"

इसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता या कहता है, उसमें वह बहुत सतर्क रहता है ।

वह परिणाम के विषय में विचारता है, अगले दिन की बात सोचता है, और यदि उसे मार्ग न सूझे तो पूछ लेता है ।

प्रश्न

१. राजपुत्र दशरथ को अपनी अदूरर्दाशता के लिये क्या मूल्य चुकाना पड़ा ?
२. अदूरदर्शी की तरह काम करने से क्या होता है ?
३. घर में चुराये हुए कपड़े होने पर भी बनारस के दूकानदार पर विपत्ति क्यों नहीं आई ?
४. जापानियों के घरों में दूरर्दाशता का आदर्श किस रूप में अंकित हुआ है ?

८

सच्चाई

एक सिंह, एक भेड़िया और एक लोमड़ी शिकार करते हुए जंगल में मिले। उन्होंने एक गधा, एक हरिण और एक खरगोश, ये तीन जानवर मारे।

आखेट को सामने रख कर शेर ने भेड़िये से कहा :

"बताओ तो मित्र भेड़िये, इस शिकार का बटवारा हम किस प्रकार करें ?"

भेड़िये ने उत्तर दिया--"इन तीन पशुओं की काटा-कूटी करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं। आप गधा ले लीजिये, लोमड़ी खरगोश ले लेगी और मैं तो हरिण से ही संतुष्ट हो जाऊँगा।"

इसके उत्तर में शेर ने एक क्रोधभरी गर्जना की और भेड़िये की सलाह के पुरस्कारस्वरूप अपने पंजे की एक ही चोट से उसका सिर कुचल दिया। अब वह लोमड़ी की ओर मुड़ा और बोला --

"और मेरी प्यारी बहिन लोमड़ी, तुम्हारा क्या प्रस्ताव है ?"

"यह तो बड़ी सीधी सी बात है, श्रीमान् !" लोमड़ी एक लंबा दंडवत करके बोली--"सबेरे का कलेवा आप गधे से कीजिये, हरिण शाम के खाने के लिये रखिये और इस खरगोश का दोनों खानोंके बीच में हल्का-सा जलपान कर लीजिये।'

"बहुत ठीक", सारे का सारा शिकार अकेले अपने को मिलता देख शेर संतुष्ट होकर बोला--"भला ऐसी बुद्धिमानी और न्याय-प्रियता की बातें करना तुम्हें किसने सिखाया है ?"
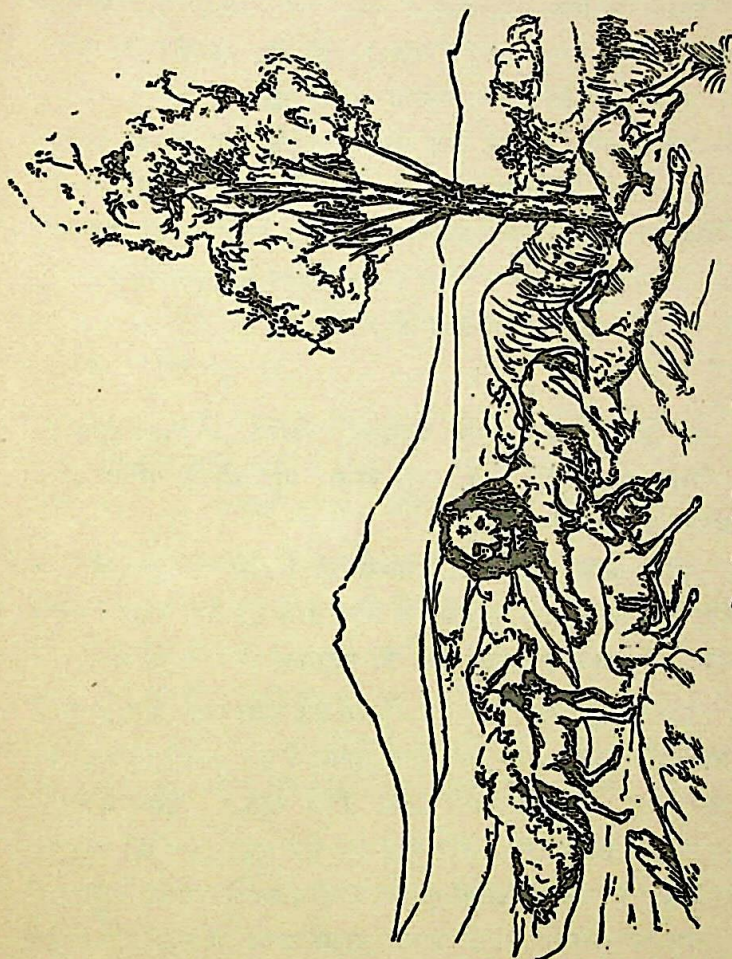
शेर लोमड़ी से प्रसन्न है

"भेड़िये ने"—लोमड़ी ने चतुरतापूर्वक उत्तर दिया।

लोमड़ी ने ऐसा क्यों कहा ? क्या उसने अपनी सत्य भावना व्यक्त की थी ? ना, बिलकुल नहीं। तो क्या वह शेर को प्रसन्न करने की सच्ची अभिलाषा रखती थी ? यह भी नहीं। उसने तो भयवश होकर ही ऐसा कहा था और इसके लिए निश्चय ही उसे बुरा-भला नहीं कहा जा सकता। पर फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसका कहना सत्य नहीं था; वह केवल उसकी चालाकी थी। और शेर ने भी जो उसे पसंद किया वह इसलिये कि उसे मांस से प्रेम था, न कि सत्य से।

*

अबू अब्बास नामक एक मुसलमान लेखक ने राजा सुलेमान की कीर्त्ति-कथा लिखी है। यह राजा यहूदियों के पवित्र शहर यरुशलम पर राज्य करता था।

उसके सभागृह में छः सौ चौकियां थीं जिनमें से तीनसौ पर दरबार के बुद्धिमान लोग बैठते थे और तीन सौ पर 'जिन' लोग। ये अपनी जादू की शक्ति से राजा की सहायता किया करते थे।

राजा के एक शब्द पर हजारों बड़े-बड़े पक्षी पंख फैलाये प्रकट हो जाते और, जब तक दरबार होता रहता, वे इन छः सौ चौकियों पर बैठे हुए लोगों के ऊपर अपनी छाया किये रहते। उसके आदेशानुसार ही प्रतिदिन प्रातः और सायं एक तेज हवा उठती जो सारे का सारा महल पलभर में इतनी दूर ले जाती जितनी दूर वैसे पहुँचने में एक मास लग जाता। इसी प्रकार राजा अपने राज्य के अंतर्गत दूर देशों पर राज्य करता था।

इसके अतिरिक्त सुलेमान ने एक ऐसा चमत्कारी सिंहासन

वनवाया था जो किसी की कल्पना में भी नहीं आ सकता। वह सिंहासन कुछ इस ढंग का बना था कि जब राजा उसपर बैठा होता तो कोई व्यक्ति उसके सामने झूठ बोलने का साहस नहीं कर पाता था।

वह हाथीदाँत का था, उसमें मोती-पन्ने और लाल जड़े थे। उसके चारों ओर चार सोने के खजूर के पेड़ थे जिन पर लाल और पन्नों के फल लगे थे। उन खजूर के पेड़ों में से दो की चोटी पर सोने के दो मोर, और दो पर सोने के दो गीध बैठे थे। सिंहासन के दोनों ओर दो पन्नों के खंभों के बीच में दो सोने के शेर खड़े थे। पेड़ों के तने के चारों ओर सोने की एक अंगूर की बेल फैली थी जिस पर लालों के अंगूर लटक रहे थे।

इजराइल के बड़े-बूढ़े लोग सुलेमान की दायीं ओर बैठते थ और इनकी कुर्सियाँ सोने की थीं। 'जिनों' का स्थान राजा की बायीं ओर था, इनकी कुर्सियाँ चाँदी की थीं।

राजा जब अपना न्याय-दरबार करता तो हर कोई उसके पास आ सकता था। जब कोई आदमी किसी दूसरे की गवाही दे रहा होता और वह यदि सत्य के जरा भी इधर उधर होता तो एक विचित्र घटना घट जाती। सिंहासन, शेर, खजूर के पेड़, मोर और गीध सब एकदम उसकी ओर घूम जाते। शेर अपने पंजे आगे की ओर फेंकते और पूंछें जमीन पर पटकने लगते, मोर और गीध भी अपने पंख फड़फड़ाने लगते।

इससे गवाह भय से काँप उठता था और जरा भी झूठ बोलने का साहस नहीं कर सकता था।

निःसंदेह यह सब राजा के लिये बड़े सुभीते का था और इससे उसका कार्य अति सुगम हो जाता था। पर भय तो सदा ही एक

दुःखदायी वस्तु होता है, इसका सत्य के साथ ठीक मेल नहीं बैठता ।

अबूअब्बास की कहानी के अनुसार भय मनुष्य को कभी-कभी सत्य बोलने को विवश तो करता है पर उसे सत्यवादी नहीं बनाता; क्योंकि वह उसे कुछ समय के बाद असत्य बोलने के लिये भी विवश कर सकता है जैसे कि हमारी पहली कहानी में लोमड़ी के साथ हुआ था, और ऐसा प्रायः होता है ।

सत्य बोलना सीखने के लिये एक स्वच्छ हृदयवाले मनुष्य को सुलेमान के सिंहासन के चमत्कार की आवश्यकता नहीं । सत्य का सिंहासन उसके अपने हृदय में होता है, उसकी आत्मा की सचाई ही उसे सत्य वचन कहने के लिये प्रेरित कर सकती है । वह इसलिये सत्य नहीं कहता कि उसे किसी शिक्षक, स्वामी या न्यायाधीश का डर है, वरन् इसलिये कि यही एक सच्चे मनुष्य के लिये उचित है, यह उसके स्वभाव का एक अंग है ।

यह सत्य-प्रेम ही है जो उसे सब भयों से निडर बनाता है । वह वही कहता है जो उसे कहना होता है, चाहे उसके लिये उसे कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े ।

*

विश्वामित्र नामक एक धनी और शक्तिशाली राजा ने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये तपस्या करने का निश्चय किया । वह अपनी क्षत्रियजाति से सर्वोच्च ब्राह्मणजाति में प्रवेश पाना चाहता था । इसके लिये उसने जो आवश्यक समझा सब किया और वह ऐसी कड़ी तपस्या के जीवन का अनुसरण करने लगा कि सबके मुंह पर यही था "राजा ब्राह्मण होने के सर्वथा योग्य है ।"

पर ब्राह्मण वशिष्ठ ऐसा नहीं समझते थे, क्योंकि वे जानते थे कि

विश्वामित्र अभिमानवश ऐसा कर रहा है और उसका त्याग सच्चा त्याग नहीं है। इसलिये उसे ब्राह्मण मानकर प्रणाम करना वशिष्ठ ने अस्वीकार कर दिया।

राजा ने क्रोधवश वशिष्ठ के कुटुम्ब के एक सौ बालक मरवा डाले। इतना दुःख शोक होने पर भी वे इस बात पर दृढ़ रहे कि जो उनके विचार में सत्य नहीं है, वह वे कदापि नहीं कहेंगे।

अव राजा ने उस सत्यवादी व्यक्ति को भी मार देने का निश्चय किया। एक दिन सायंकाल वह इस दुष्कर्म को करने के लिये वशिष्ठ की कुटिया की ओर चला।

द्वार के निकट पहुँचकर उसने वशिष्ठ को अंदर अपनी स्त्री से बातें करते हुए सुना। उसके कान में जब उसका अपना नाम पड़ा तो वह सुनने के लिये वहीं ठहर गया। जो वचन उसने सुने वे शुद्ध और पवित्र होने के साथ-साथ क्षमा से भी परिपूर्ण थे। राजा का हृदय द्रवित हो उठा, पश्चात्ताप से भरकर उसने अपना अस्त्र वहीं फेंक दिया और वह अन्दर जाकर ऋषि के चरणों पर गिर पड़ा।

राजा के मन की ऐसी अवस्था देखकर वशिष्ठ ने उसका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और कहा—"ब्रह्मर्षि!" राजा ने नम्रतापूर्वक पूछा "इससे पहले आपने मेरी तपस्या का क्यों आदर नहीं किया ?"

"क्योंकि तब तुम अपनी शक्ति के मद से ब्राह्मणपद की माँग करते थे, परन्तु अब तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा है और इसलिये तुम ब्राह्मण की सच्ची वृत्ति में आ गये हो", वशिष्ठ ने उत्तर दिया।

वशिष्ठ निर्भयतापूर्वक और बिना किसी द्वेष भावना के सत्य बोलना जानते थे।

क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि इस प्रकार का सत्य बोलना कितना सुन्दर है, चाहे ऐसा करने में विपत्ति ही क्यों न उठानी पड़े ?

और ऐसा प्रायः होता है कि जो लोग इस प्रकार की विपत्ति का सामना करते हैं, उनके लिये अन्त में सब बातें भली हो जाती हैं, यद्यपि आरंभ में ऐसा प्रतीत नहीं होता। असत्य की सफलता सदा अस्थायी होती है, जबकि अधिकतर सत्य कहना ही चतुर बनने का सबसे बढ़िया तरीका है।

एक बार, सबेरे के समय, दिल्ली के बादशाह ने योग्य व्यक्तियों को उपाधियाँ बाँटने के लिये दरबार किया। जब उत्सव समाप्त होने को आया तो उसने देखा कि जिन व्यक्तियों को उसने बुलाया था उनमें से सैयद अहमद नामक एक युवक अभी तक नहीं पहुँचा है।

बादशाह पालकी में सवार होने के लिये अपने सिंहासन पर से उठा; इसमें बैठकर वह अपने बड़े महल के एक भाग से दूसरे भाग को जाया करता था।

ठीक उसी समय उस युवक ने उतावली से प्रवेश किया।

"तुम्हारा पुत्र देर से पहुँचा है", बादशाह ने सैयद के पिता से जो उसका मित्र था, कहा, और स्वयं युवक की ओर कड़ी दृष्टि से देखकर प्रश्न किया—"यह देर क्यों हुई ?"

"बादशाह सलामत"—सैयद ने सच्चाई से कहा, "मैं आज बहुत देर तक सोता रहा।"

दरवारी स्तंभित हो युवक की ओर ताकने लगे। किस ढिठाई के साथ यह वादशाह के सामने अपना अपराध स्वीकार कर रहा है ? क्या इससे अच्छा वहाना इसके पास नहीं था ? कैसी मूर्खतापूर्ण बात कह दी इसने !

पर हुआ इसके विपरीत। बादशाह एक क्षण तो सोचता रहा फिर उसने युवक की उसकी सत्यवादिता के लिये प्रशंसा की और

उसे मोतियों की एक माला और सम्मान के चिन्ह-स्वरूप, मस्तक पर धारण करने के लिये एक रत्न प्रदान किया।

इस प्रकार सैयद अहमद को, जो सत्य से प्रेम करता था और बादशाह हो चाहे किसान सबसे सच कहता था, यह प्रतिफल मिला।

यह निश्चित है कि बिना किसी कष्ट के सत्य बोल सकने के लिये सबसे अच्छा ढंग यह है कि हम अपना व्यवहार सदा इस प्रकार रखें कि हमें अपना कोई भी कार्य छुपाना न पड़े। इसके लिये प्रतिक्षण हमें यह याद रखना चाहिये कि हम भगवान् के सम्मुख हैं। कारण, वचन की सच्चाई कार्य की सच्चाई की मांग करती है। सच्चा मनुष्य वह है जो अपने वचन और कर्म से सब पाखंड को निकाल देता है।

शहर 'अमरोहे' में एक विशेष प्रकार का बर्तन बनता है जिसे 'कागजी' कहते हैं। इसपर रुपहले काम की सजावट होती है। ये बर्तन होते तो हैं बहुत सुन्दर परन्तु इतने हल्के-फुल्के और बोदे कि जरा से प्रयोग से ही टूट जाते हैं। फिर भी देखने में ये बड़े उपयोगी मालूम देते हैं, पर उन्हें देखकर ही मन को संतुष्ट कर लेना चाहिये।

बहुत से व्यक्ति भी इन कागजी बर्तनों के समान होते हैं। उनका स्वरूप सुन्दर होता है, पर यदि तुम उन्हें किसी भी बात में कसौटी पर कसने का प्रयत्न करो तो तुम्हें पता लगेगा कि उनके अंदर दिखावे के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। उनपर तनिक भी भरोसा न रखो क्योंकि उनकी दुर्बलता के लिये वह बहुत भारी बोझ है।

एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र को बनारस में किसी पण्डित से विद्या पाने के लिये भेजा।

बारह वर्ष के बाद वह युवक अपने गाँव लौटा। बहुत से लोग यह सोचकर कि अब वह एक बड़ा भारी पण्डित हो गया है उसके घर

उससे मिलने के लिये आये। उन्होंने उनके सामने संस्कृत भाषा की एक पुस्तक रखी और उससे कहा—"पूज्य पण्डितजी, इसकी विद्या हमें भी सिखाईये।"

युवक स्थिर दृष्टि से उस पुस्तक की ओर देखता रहा। वास्तव में वह तो उसका एक शब्द भी नहीं समझ पा रहा था। बनारस में उसने सिवाय अक्षरज्ञान के और कुछ नहीं सीखा था। वे अक्षर भी उसके मस्तिष्क में इसलिये धीरे-धीरे प्रवेश पा गये थे कि वे वहाँ खूब बड़े आकार में श्याम-पट पर लिखे रहते थे और वह उन्हें प्रति दिन देखा करता था।

वह चुपचाप पुस्तक के सामने बैठा रहा। उसकी आँखों से ऐसा प्रतीत होने लगा कि बस अब वे बरसने ही वाली हैं।

आगतों ने कहा—"पण्डितजी, अवश्य ही इस पुस्तक की किसी चीज ने आपके हृदय को द्रवित किया है। जो-कुछ इसमें है, आप हमें भी बताइये।"

"ये अक्षर बनारस में तो बड़े होते थे, परन्तु यहाँ ये छोटे हैं"—अंत में वह बोला।

क्या यह पण्डित उस कागजी बर्तन के सदृश नहीं था?

*

एक भेड़िया गंगा नदी के किनारे चट्टानों पर रहता था। पर्वतों पर बर्फ पिघलने से नदी में बाढ़ आ गयी। एक दिन नदी इतनी चढ़ आयी कि जिस चट्टान पर भेड़िया रहता था उसके चारों ओर पानी ही पानी हो गया। उस दिन भेड़िया अपने भोजन की तलाश में न जा सका। यह देखकर कि आज खाने के लिये कुछ नहीं है उसने कहा—"अच्छा तो है, आज पवित्र दिन भी है; इसके उपलक्ष्य में मैं आज व्रत रखूंगा।"

वह चट्टान के एक किनारे बैठ गया और व्रत का पवित्र दिन मनाने के लिये उसने अपनी आकृति खूब गंभीर बना ली।

उसी समय एक जंगली बकरी पानी के ऊपर से एक चट्टान पर कूदती हुई उसी स्थान पर आ पहुँची जहाँ भेड़िया खूब भक्तिभाव में बैठा था।

ज्यों ही भेंड़िये ने उसे देखा वह एकदम चिल्ला उठा—"ओह, यह रहा कुछ खाने को!"

वह बकरी पर झपटा, पर चूक गया। दुबारा झपटा, तब भी वह सफल नहीं हुआ। अंत में बकरी तेज बहती हुई धारा को पार करके पूरी तरह से भेड़िये की पहुँच के बाहर हो गई।

"बहुत खूब!" भेड़िये ने अपना साधु भाव फिर से धारण करते हुए कहा—"मैं आज व्रत के दिन बकरी का मांस खाकर अपवित्र होऊँगा नहीं। व्रत के दिन मांस! कदापि नहीं।"

उस भेड़िये, उसकी भक्ति और व्रत के प्रति उसकी श्रद्धा के बारे में तुम्हारा क्या विचार है? तुम उसके कपट पर हँसते हो। पर कितने ही लोग ऐसे हैं जिनकी सच्चाई भेड़िये की सच्चाई जैसी होती है, जो सुन्दर भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं, क्योंकि उसमें उनका स्वार्थ होता है। वे छोटे-छोटे भक्तिभाव के काम करते हैं, क्योंकि वे प्रकट रूप में बुरे कार्य नहीं कर पाते; पर इस सब चालाकी के होते हुए भी, क्या तुम सोचते हो कि ये कपटी सच्चे और न्यायपरायण लोगों के सामने अधिक समय तक टिक सकते हैं?

*

हनुमान् की सेना के बंदरों और रीछों ने राम और उनके भाई लक्ष्मण के लिये दस शीशवाले राक्षस रावण के साथ युद्ध किया था।

सैनिकगण चारों ओर से उस पर आक्रमण कर रहे थे। उनकी चोटों से बचने में अपने को अशक्त पाकर रावण ने अपनी जादू की शक्ति का प्रयोग किया।

एकदम जादू के बल से, उसके चारों ओर, राक्षसों के बीच में, बहुत से राम और लक्ष्मण उत्पन्न हो गये। यह वास्तव में केवल एक धोखा और इन्द्रजाल था। परन्तु बन्दरों और रीछों ने उन्हें सच्चा समझ कर एकदम युद्ध बन्द कर दिया। अब कैसे वे युद्ध जारी रखते और अपने प्रिय स्वामी राम और लक्ष्मण के ऊपर पत्थर बरसाते। उन्हें इस प्रकार चिंतित देखकर रावण एक क्रूर हंसी हंसा। राम को भी हंसी आ गयी; इस प्रकार के झूठ को छिन्न-भिन्न करने, इस धोखा-घड़ी को व्यर्थ करने और सत्य को विजय दिलाने में उन्हें अभी कितनी प्रसन्नता होगी! उन्होंने अपने शक्तिशाली धनुष पर एक बाण चढ़ाया और छोड़ दिया। बाण का उन सब धोखे की छाया-मूर्तियों में से सर-सर करते हुए निकलना था कि वे लोप हो गयीं। वास्तविक तथ्य के जानने पर हनुमान् की सेना में फिर से साहस आ गया।

सत्यवादी मनुष्य के सत्य वचन भी इसी तीर के समान होते हैं जो बहुत से झूठ और धोखे को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं।

*

दक्षिण भारत की एक प्राचीन कथा है। 'राजाबेला' नामक एक राजा के बारे में प्रसिद्ध था कि केवल उसकी हंसी मीलों दूर तक के प्रदेश को बेले के फूल की मीठी सुगन्ध से भर देती थी। पर इसके लिए उसकी हंसी का उसके हृदय की आनन्दमयी और स्वाभाविक प्रफुल्लता से निकलना आवश्यक था। यदि वह बिना

सच्ची प्रफुल्लता के हंसने का प्रयत्न करता तो उसका कुछ फल नहीं होता। जब उसका हृदय प्रसन्न रहता तो उसकी हंसी भी एक सुगंधित स्रोत के समान फूट पड़ती।

इस हंसी का गुण तो पूर्णतया उसकी सच्चाई में था।

राजा दुर्योधन के महल में भोजनादि का खूब राजसी ठाट-बाट था। सोने-चाँदी के बर्तन थे——लाल, पन्ने और जगमगाते हीरे-जड़े। श्रीकृष्ण को भोजन के लिये निमंत्रण मिला पर वे नहीं गये। उसी संध्या को वे एक गरीब शूद्र के घर भोजन करने चले गये; उसने भी उन्हें आमंत्रित किया था। वहाँ भोजन अत्यन्त सादा था और बर्तन भी अति साधारण, पर कृष्ण ने एक को छोड़कर दूसरे को चुना, क्योंकि शूद्र का अर्पित किया हुआ भोजन सच्चे प्रेम से ओत-प्रोत था जब कि राजा दुर्योधन के राजसी भोज का आयोजन खाली दिखाने के लिये किया गया था।

ऐसी ही एक कहानी और भी है; प्रतापी राम ने एक बार एक नीच जाति की चिड़ीमार की स्त्री के यहाँ भोजन किया था। वह उनके आगे कुछ फल ही रख सकी थी, क्योंकि उसके पास और कुछ नहीं था। पर उसके पास जो सबसे बढ़िया चीज थी वही उसने इतने प्रेमपूर्ण हृदय से उन्हें अर्पित की कि इससे राम का हृदय पुलकित हो गया और उन्होंने यह इच्छा की कि सच्चे हृदय द्वारा दी गयी इस भेंट की स्मृति नष्ट नहीं होनी चाहिये। इसलिये आज भी कई शताब्दियों के बाद लोग इसका वर्णन करते हैं।

जलाल एक बुद्धिमान और प्रसिद्ध उपदेशक थे। एक दिन दो तुर्क कुछ भेंट लेकर उनके पास आये; वे उनसे उपदेश सुनने की इच्छा रखते थे। वे बहुत गरीब थे, इसलिये उनकी भेंट भी साधारण

थी—एक मुट्ठी दाल। जलाल के कुछ शिष्यों ने उस भेंट की ओर अवज्ञा की दृष्टि से देखा, परंतु जलाल ने कहा—"पैगम्बर मोहम्मद को एक बार अपने किसी कार्य के लिये धन की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि जो कुछ वे दे सकते हों दें। कुछ ने अपनी संपत्ति का आधा भाग दिया और कुछ ने तिहाई। अबू बक़र ने अपना सारा धन उन्हें दे दिया। मोहम्मद को इस प्रकार बहुत से अस्त्र-शस्त्र और पशु आदि मिल गये। अंत में एक गरीब स्त्री आयी; उसने तीन खजूरें और गेहूँ की एक रोटी भेंट में दी। यही उसकी कुल पूंजी थी। यह देखकर बहुत से लोग हँस पड़े। पर पैगम्बर ने उन्हें अपना एक स्वप्न सुनाया जिसमें उन्होंने कुछ स्वर्गदूतों को हाथ में एक तराजू लिये हुए देखा था; उन्होंने एक पलड़े में उन सबकी भेंटें रखीं और दूसरे में केवल उस गरीब स्त्री की तीन खजूरें और रोटी। तराजू स्थिर रही क्योंकि यह पलड़ा भी उतना ही भारी निकला जितना पहला।" जलाल ने आगे समझाया—

"एक मामूली भेंट यदि वह सच्चे हृदय से दी गयी है, तो वह भी उतना ही मूल्य रखती हैं जितना कि कोई मूल्यवान् भेंट।"

यह सुनकर दोनों तुर्क बड़े प्रसन्न हुए और फिर किसी को भी एक मुट्ठी दाल पर हंसने का साहस नहीं हुआ।

*

छोटी जाति का एक गरीब मनुष्य एक बार अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिये सारा दिन शिकार ढूंढ़ता रहा, पर उसके कुछ हाथ न लगा। रात हो गयी पर वह अभी जंगल में ही था—अकेला, भूखा-प्यासा और अपने असफल प्रयत्नों से थका हुआ। इस आशा से कि कहीं उसे कोई घोंसला मिल जाय। वह एक बेल के पेड़ पर चढ़

गया। इस पेड़ के तेहरे पत्ते भक्तों द्वारा शिवजी को चढ़ाये जाते हैं। पर उसे वहां कोई घोंसला न मिला; उसे अपनी स्त्री का विचार आया, फिर बच्चों का आया जो उसकी तथा भोजन की आशा में बैठे होंगे। वह रोने लगा। कहानी में आगे आता है कि करुणा के आँसुओं में बड़ा बल होता है। ये उन आँसुओं से, जो अपने निज के दुःख के लिये बहाये जाते हैं, अधिक कीमती होते हैं।

शिकारी के आँसू बेल वृक्ष के पत्तों पर गिरे और फिर उन्हें लिये वे वृक्ष के तने के पास पृथ्वी पर रखे शिवलिंग पर जा पड़े। उसी समय एक साँप ने उस मनुष्य को डस लिया और वह वहीं मर गया। दूतगण उसकी आत्मा को देवलोक में ले गये और उसे शिवजी के आगे उपस्थित किया।

स्वर्ग के देवता एक स्वर में बोल उठे—"यहाँ इस मनुष्य की आत्मा के लिये कोई स्थान नहीं। यह नीच जाति का है, इसने व्रत-नियमों की उपेक्षा की है, अपवित्र खाद्य खाया है और देवता-ओं पर जो सदा से चढ़ावे चढ़ाये जाते हैं वे भी इसने नहीं चढ़ाये हैं।"

पर शिवजी ने कहा—"इसने मुझपर बेल की पत्तियां चढ़ायी हैं, विशेषकर इसने तो मुझे अपने सच्चे आँसू अर्पित किये हैं। सच्चे हृदयों के लिये कोई नीच जाति नहीं होती।" और उन्होंने उसे अपने स्वर्ग में अंगीकार कर लिया।

*

ये सब कथाएं हमें बताती हैं कि प्रत्येक देश में तथा प्रत्येक युग में मनुष्य और उनके देवता सच्चाई का मान करते रहे हैं। वे सब वस्तुओं में सत्य और सरलता से प्रेम करते हैं।

जिसका निवास असत्य में है वह मनुष्य जाति का शत्रु है।

सब मानवविषयक विज्ञान तथा दर्शन—खगोलविद्या, गणित, रसायन-विद्या और भौतिक विज्ञान——सत्य की खोज करते हैं। पर छोटी-छोटी बातों में भी सत्य की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि बड़ी में।

छोटे बालको, सत्य बोलना सीखने के लिये बड़े होने की प्रतीक्षा मत करो। सत्यवादी बनने और सत्य में स्थिर रहने का अभ्यास डालने के लिये कोई भी समय अति-शीघ्र नहीं कहा जा सकता।

इसीलिये सत्य बोलने की इच्छा रखते हुए भी कभी कभी मनुष्य के लिये सत्य बोलना इतना कठिन हो जाता है। इसके लिये सबसे प्रथम तो मनुष्य को सत्य को समझना और उसे ढूंढ़ना चाहिये और यह सदा इतना सरल नहीं होता।

बनारस के राजा के चार युवक पुत्र थे। प्रत्येक ने अपने पिता के सारथी से कहा——"मैं 'किंशुक' का पेड़ देखना चाहता हूँ।"

सारथी ने उत्तर दिया——"मैं तुम्हें दिखाऊंगा।" और सबसे बड़े भाई को वह अपने साथ घूमने के लिये ले गया।

जंगल में उसने राजकुमार को किंशुक का पेड़ दिखाया। उस समय वह ऋतु थी जबकि उस पर कोंपल, पत्ते, फूल कुछ नहीं था। इसलिये राजकुमार ने केवल एक रूखी-सूखी लकड़ी का तना ही देखा।

उसके कुछ सप्ताह बाद दूसरा राजकुमार रथ में घूमने के लिये गया। उसने भी किंशुक देखा और उसे पत्तों से लदा पाया।

उसी ऋतु में कुछ दिन बाद तीसरे की वारी आयी। उसने देखा कि वह फूलों से लाल हो रहा है।

सबसे अंत में चौथे ने पेड़ को देखा। उसके फल अब पक चुके थे।

एक दिन जब चारों भाई फिर इकट्ठे हुए, एक ने पूछा—किंशुक का पेड़ कैसा है?

सबसे बड़े ने कहा—"एक नंगे तने के समान।"

दूसरा बोला—"फले-फूले केले के पेड़ के समान।"

तीसरा—"लाल-गुलाबी फूलों के गुलदस्ते के समान।"

और चौथा—"वह तो एक प्रकार का बबूल का पेड़ प्रतीत होता है जिसमें फल भी है।"

जब चारों का मत मिलता न दिखायी दिया तो वे इकट्ठे होकर फैसला कराने के लिये अपने पिता के पास गये। जब राजा ने सुना कि किस प्रकार एक के बाद एक ने किंशुक का पेड़ देखा तो वह मुस्करा पड़ा। उसने उनसे कहा—

"तुम चारों ठीक कहते हो, पर तुम चारों ही भूल गये हो कि पेड़ सब ऋतुओं में एकसा नहीं रहता।"

प्रत्येक ने वही कहा जो उसने देखा और प्रत्येक ने उसे अस्वीकार किया जो दूसरे जानते थे।

इस प्रकार लोग प्रायः सत्य का एक छोटा सा अंश ही जानते हैं और उनकी गलती बस यही होती है कि वे समझते हैं कि वे उसे पूरे का पूरा जानते हैं।

यह गलती कितनी कम हो जाती है यदि वे बचपन में ही सत्य की अधिकाधिक खोज करने के लिये उससे उचित प्रेम करना सीख जाते।

*

हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के कुमायूं नामक स्थान का राजा,

एक बार अल्मोड़े की घाटी में शिकार खेलने गया। उस समय वह स्थान घने जंगल से ढका था।

एक खरगोश झाड़ियों में से निकला। राजा ने उसका पीछा किया। किन्तु अचानक वह खरगोश चीते में बदल गया और शीघ्र ही दृष्टि से ओझल हो गया।

उस आश्चर्यजनक घटना से स्तंभित हुए राजा ने पंडितों की एक सभा बुलायी और उनसे इसका अर्थ पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—"इसका यह अर्थ है कि जिस स्थान पर चीता दृष्टि से ओझल हुआ था वहाँ आपको एक नया शहर बसाना चाहिये क्योंकि चीते केवल उसी स्थान से भाग जाते हैं जहां मनुष्यों को एक बड़ी संख्या में बसना हो।"

अतएव, नया शहर बसाने के लिये मजदूर लोग काम पर लगा दिये गये। अन्त में जमीन की कठोरता देखने के लिये एक स्थान पर उन्होंने लोहे की एक मोटी कील गाड़ी। उस समय अचानक पृथ्वी में एक हल्का सा कंपन हो उठा।

"ठहरो", पंडित लोग चिल्ला पड़े—"इसकी नोक सर्पराज शेषनाग की देह में धँस गयी है। अब यहाँ शहर नहीं बनाना चाहिये।"

उस कहानी में आगे आता है कि जब वह लोहे की कील पृथ्वी से बाहर निकाली गयी तो वह वास्तव में शेषनाग के रक्त से लाल हो रही थी।

"यह तो बड़े दुःख की बात है", राजा बोला—"हम यहाँ शहर बनाने का निश्चय कर चुके हैं, इसलिये अब बनाना ही होगा।"

उन पण्डितों ने क्रोध में आकर भविष्यवाणी की कि शहर पर

जब वह लोहे की कील पृथ्वी से बाहर निकाली गई तो वह रक्तसे लाल हो रही थी।

कोई भारी विपत्ति आयेगी और राजा का अपना वंश भी शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।

जमीन वहाँ की उपजाऊ थी और पानी भी खूब था। छः सौ साल से अल्मोड़ा शहर उस पहाड़ पर बसा हुआ है, और उसके चारों तरफ फैले खेत बढ़िया फसलें पैदा करते हैं।

इस प्रकार बुद्धि रखते हुए भी वे पण्डित अपनी भविष्यवाणी में गलत निकले। निःसंदेह वे सच्चे थे और उन्हें विश्वास था कि वे सत्य कह रहे हैं। किन्तु लोग ऐसी गलती प्रायः करते हैं और अंधविश्वास को वास्तविकता समझ लेते हैं।

नन्हें बालको, संसार अंधविश्वासों से भरा पड़ा है। सत्य को ढूंढ़ने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि मनुष्य सदा अपने विचारों, कार्यों और वचनों में अधिकाधिक सच्चे और निष्कपट रहें, क्योंकि दूसरों को सब बातों में धोखा देना छोड़कर ही हम अपने आपको कम से कम धोखा देना सीखते हैं।

प्रश्न

१. शेर ने भेड़िये की सलाह के लिये उसका सिर कुचल दिया जब कि लोमड़ी की बात उसे बहुत पसंद आई, यह क्यों ?

२. राजा सुलेमान के सिंहासन की क्या विशेषता थी ?

३. जब मनुष्य डर के वश होकर कोई काम करता है तो क्या उसमें सच्चाई का स्पर्श रहता है ? उदाहरणपूर्वक समझाओ।

४. वशिष्ठ विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि क्यों नहीं कहते थे ?

५. ब्राह्मण पद पाने के लिये क्या कोरी तपस्या काफी है ? यदि नहीं, तो क्यों ?

६. देव के आने पर भी सम्राट् ने [illegible] को क्यों [illegible] ?

७. कागजी मनुष्य किसे कहते हैं ? ऐसे मनुष्य विश्वास के पात्र क्यों नहीं होते ?
८. इस कहानी में सच्चे वचनों की किस चीज के साथ तुलना की गई है ? उनमें कौन-सी शक्ति होती है ?
९. श्री कृष्ण राजा दुर्योधन के घर का भोजन छोड़कर एक शूद्र के घर भोजन करने क्यों चले गये थे ?
१०. ऊपरी मन से दी गई एक बड़ी भेंट और सच्चे हृदय से दी गई एक मामूली भेंट में से कौन-सी अच्छी है ? और क्यों ?
११. 'सच्चे हृदयों की कोई नीच जाति नहीं होती'—इसका क्या आशय है ?
१२. सत्य बोलना सीखने के लिए क्या बड़ा होना आवश्यक है ?

९

ठीक जांच सकना

एक बिल्कुल सीधी छड़ी लो, उसका आधा भाग पानी में डुबो दो। छड़ी तुम्हें बीच में से टेढ़ी दिखायी पड़ेगी, पर उसका यह रूप झूठा है; और यदि तुम यह सोचो कि छड़ी वास्तव में टेढ़ी हो गयी तो तुम्हारा विचार गलत होगा क्योंकि छड़ी को पानी में से निकालते ही तुम देखोगे कि वह ठीक पहले की ही भाँति सीधी है।

साथ ही यह भी संभव है कि यदि एक टेढ़ी छड़ी को किसी विशेष ढंग से पानी में खड़ा कर दिया जाय तो वह सीधी प्रतीत होन लगे।

कई मनुष्य भी इन छड़ियों के समान होते हैं। कुछ तो, यदि उन्हें ठीक ढंग से न जाँचा जाय तो, उतने सच्चे प्रतीत नहीं होते जितने वे वास्तव में हैं। और कुछ लोग ऐसा मायावी रूप धारण कर लेते हैं कि वे लगते सच्चे हैं जब कि वे होते वास्तव में छलिया हैं। इसलिये बाह्य रूप का हमें कम से कम विश्वास करना चाहिये, साथ ही किसी व्यक्ति के बारे में बिना सोचे समझे मत भी स्थिर नहीं कर लेना चाहिये।

भारतवर्ष में एक साधु एक बार भिक्षा माँगता माँगता एक प्रदेश में से गुजरा। एक चरागाह में उसे एक मेढ़ा दिखायी पड़ा। जानवर उस समय क्रोध में था। उसने साधु पर झपटने की तैयारी की और उसके लिये वह सिर नीचे कर कुछ कदम पीछे हटा।

"वाह!" वह धर्माभिमानी साधु बोल उठा, "कैसा चतुर

और भला है यह जानवर ! इसे पता है कि मैं एक गुणी व्यक्ति हूं । मुझे प्रणाम करने के लिये इसने मेरे सामने सिर झुकाया है ।"

ठीक उसी समय मेढ़ा उसपर कूद पड़ा और अपने सिर की एक ही ठोकर से उसने उस गुणवान व्यक्ति को जमीन पर दे पटका ।

अनधिकारी के प्रति अत्यधिक आदर और विश्वास दिखाने से यही दशा होती है । कुछ लोग कहानी के उस भेड़िये के सदृश होते हैं जिसने चरवाहे का लबादा पहन लिया था और भेड़ें उसे अपना स्वामी समझ बैठी थीं और कुछ उस गधे के समान भी होते हैं जो शेर की खाल ओढ़ कर भयंकर प्रतीत होने लगा था ।

*

जहां मनुष्य दूसरों के बाह्य रूप में विश्वास करने की गलती कर सकता है, वहां, इसके विपरीत वह दूसरों के बारे में अनुदार और उतावला मत बनाने के प्रलोभन में भी पड़ सकता है ।

फारिस का शाह इस्माइल सफवी खुरासान का राज्य जीत-कर अपनी राजधानी को वापिस लौट रहा था । जब वह कवि हातिफी के निवासस्थान के पास से गुजरा तो उसके मन में कवि से मिलने की इच्छा हो आयी । उस प्रसिद्ध व्यक्ति को देखने की उसकी इच्छा इतनी प्रबल हो उठी कि उसमें इतना धैर्य भी नहीं रहा कि वह मकान के मुख्य द्वार तक पहुंच सके । इतने में उसकी दृष्टि अहाते की दीवार के बाहर लटकती हुई पेड़ की एक शाखा पर पड़ी । वह उसके सहारे झूल गया और दीवार को फांदता हुआ कवि के बगीचे में जा कूदा ।

यदि इसी प्रकार सहसा कोई तुम्हारे मकान में घुस आये तो तुम क्या समझोगे ? निश्चय ही, तुम उसे चोर समझोगे और उसका उसी ढंग से स्वागत भी करोगे।

पर हातिफी ने यह अच्छा किया कि उसने घटना के बाह्य स्वरूप को देखकर और अपने सर्वप्रथम विचार के अनुसार ही अपना मत स्थिर नहीं कर लिया। उसने अपने अनोखे अतिथि की खूब आव-भगत की। और कुछ दिन बाद तो उसने शाह की उन वीर कृतियों पर कुछ नयी कविताएं भी लिखीं जिन्हें सुनाने के लिये शाह इतना उतावला हो उठा था।

साधारणतया दूसरों के अवगुण देखना अधिक आसान होता है। प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई दोष होता है जिसे अपनी अपेक्षा दूसरे लोग जल्दी जान लेते हैं। परन्तु यदि हम दूसरों के प्रति कम से कम अन्याय करना चाहते हैं तो हमें उनके सर्वोत्तम गुण ही देखने का यत्न करना चाहिये। एक उक्ति है—

"यदि तुम्हारा मित्र काना है तो उसके मुंह को एक ओर से देखो।"

तुम्हारे जो सहपाठी तुम्हें फूहड़ और सुस्त प्रतीत होते हैं वे ही सबसे अधिक परिश्रमी भी हो सकते हैं।

तुम्हारे जो अध्यापक तुम्हें अनुशासनप्रिय और कठोर मालूम देते हैं वे निश्चय ही तुमसे प्रेम करते हैं और केवल तुम्हारी उन्नति की ही इच्छा करते हैं।

वह मित्र जो तुम्हें कभी दु:खदायी अथवा गंवार प्रतीत होता है तुम्हारा सबसे अधिक हितैषी हो सकता है।

कई ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें हम दुष्ट समझकर उनसे प्रेम

नहीं करते। उनके अंतरतम में भी कोई न कोई ऐसा गुण होता है जिसे हम देख नहीं पाते।

आगोबीओ शहर के आसपास के खेतों और जंगलों में एक विशालकाय भेड़िये का इतना आतंक छाया हुआ था कि वहां कोई रास्ता चलने का साहस नहीं करता था। वह अनेक मनुष्यों और पशुओं का सफाया कर चुका था।

अंत में संत फ्रांस्वा ने उस भयानक जानवर का सामना करने का निश्चय किया। वे शहर से बाहर निकले। उनके पीछे पुरुषों और स्त्रियों की एक भारी भीड़ थी। ज्यों ही वे जंगल के समीप पहुँचे, त्यों ही भेड़िया मुंह फाड़े संत की ओर लपका। परंतु फ्रांस्वा ने शान्तिपूर्वक एक संकेत किया और भेड़िया ठंडा होकर उनके पैरों के पास ऐसे लोट गया मानों भेड़ का बच्चा हो।

"भाई भेड़िये", संत फ्रांस्वा ने कहा, "तूने इस देश को बहुत हानि पहुँचाई है। जो दण्ड हत्यारों को मिलना चाहिये उसी दंड का तू अधिकारी है; सब लोग तुझसे घृणा करते हैं। परंतु यदि तेरे और आगोबीओ के मेरे इन मित्रों के बीच मैत्री स्थापित हो जाय तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

भेड़िये ने अपना सिर झुका लिया और वह अपनी पूंछ हिलाने लगा।

संत फ्रांस्वा ने फिर कहा—"भाई भेड़िये, मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि तू इन लोगों के साथ शाँतिपूर्वक रहना स्वीकार कर ले तो ये तेरे साथ अच्छा बर्ताव करेंगे और तुझे प्रतिदिन खाना भी देंगे। क्या तू भी यह प्रतिज्ञा करता है कि आज से तू इन्हें कोई हानि नहीं पहुँचायगा ?"

अब तो भेड़िये ने अपना सिर पूरी तरह से झुका लिया और
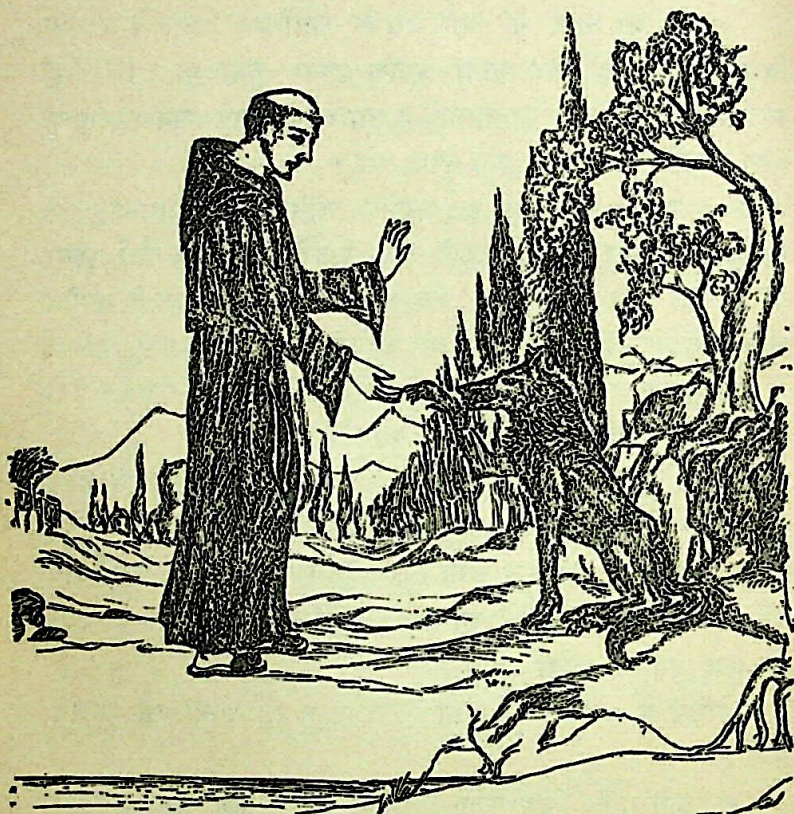
संत फ्रांस्वा का भेड़िये को समझाना

अपना दायां पंजा संत के हाथ में रख दिया। इस प्रकार सच्चे दिल से दोनों में संधि स्थापित हो गयी।

तब फ्रांस्वा भेड़िये को आगोबीओ के विशाल जनपथ की ओर ले चले। वहाँ नागरिकों की एक बड़ी भीड़ के सामने उन्होंने उक्त वचन फिर दुहराये। भेड़िये ने भी फिर से अपना पंजा संत के हाथ में रख दिया जिसका अर्थ था कि वह भविष्य में अच्छे आचरण करने की प्रतिज्ञा करता है।

उसके बाद वह भेड़िया उस नगर में दो वर्ष तक रहा और उसने इस बीच में किसी को कोई हानि नहीं पहुंचाई। नगरवासी भी उसके लिये प्रतिदिन भोजन लाते थे। जब उसकी मृत्यु हुई तो सबको दुःख हुआ।

वह भेड़िया कितना भी बुरा क्यों न प्रतीत होता हो पर उसके अन्दर एक ऐसी चीज थी जिसे, वास्तव में, तब तक किसी व्यक्ति ने नहीं जाना जब तक संत फ्रांस्वा ने उसे 'भाई' कहकर संबोधित नहीं किया। इस कहानी में भेड़िया निःसंदेह एक बड़े अपराधी का दृष्टांत उपस्थित करता है जिससे सब लोग घृणा करते हैं; परंतु यह हमें बताती है कि उन लोगों में भी, जिनसे किसी को कोई आशा नहीं होती, भलाई के कुछ ऐसे बीज होते हैं जो तनिक सा प्रेम पाकर फूट निकलते हैं।

ऐसा कोई भी लकड़ी का तख्ता न होगा—चाहे वह कितना भी सड़ा गला क्यों न हो—जिसमें एक कुशल मिस्त्री कुछ रेशे ठीक अवस्था में न देख सके। एक फूहड़ कारीगर अज्ञान और घृणावश उसे फेंक देगा पर एक प्रवीण बढ़ई उसे उठाकर रख लेगा और जो हिस्सा सड़ गया है उसे निकालकर बाकी को होशियारी से रंदा फेरकर साफ कर लेगा। वृक्षों की कठोर गाँठें मूर्त्ति बनानेवाले

कलाकार के बड़े काम आती हैं, क्योंकि उन्हीं में वह छोटे-छोटे अत्यन्त आकर्षक चित्र खोद सकता है।

*

गियाना प्रदेश का जलवायु यूरोप-निवासियों के लिये अत्यन्त घातक है। वहाँ दंडितों और निर्वासितों के लिये बंदीगृह बने हुए हैं। कई वर्षों की बात है, वहाँ एक बार एक प्रहरी अपनी देखरेख में कैदियों का एक गिरोह केन नामक स्थान को ले जा रहा था। अचानक, तट के समीप ही, जब लहरें किनारे की ओर बढ़ रही थीं, वह पानी में गिर पड़ा।

उस बंदरगाह में लहरों के उतार के समय इतनी रेत भर जाती थी कि नौका को वहां खड़ा करना सर्वथा असंभव हो जाता था। इसके विपरीत, ज्वार के समय पानी के तेज बहाव के साथ-साथ शार्क मछलियाँ बड़ी संख्या में आकर सारे तट को घेर लेती थीं।

पानी में गिरे हुए उस प्रहरी की अवस्था अत्यन्त चिंताजनक हो उठी थी, क्योंकि तैरना भी उसे नाममात्र ही आता था। क्षण-क्षण में यह भय बढ़ रहा था कि हिंसक जन्तु उसे निगल जायंगे। उसी समय किसी कोमल भावना से प्रेरित होकर एक कैदी पानी में कूद पड़ा। वह उस प्रहरी को पकड़ने में सफल हो गया और यथेष्ट प्रयत्नों के बाद वह उसे बचा सका।

वह मनुष्य एक अपराधी था—ऐसा अपराधी जिसे यदि कोई रास्ता चलता कैदी की पोशाक में, नम्बर और निशानसहित, देख ले तो घृणा से मुंह फेर ले। उसका तो अब अपना कोई नाम ही नहीं रह गया था, नंबर ही उसका नाम था। वह अब एक कृपापूर्ण दृष्टि, एक दयापूर्ण शब्द का भी अधिकारी नहीं था। पर इस विचार को

हम न्यायपूर्ण नहीं कह सकते क्योंकि उसके अंदर भी दया नाम की वस्तु का निवास था। सब दोषों के होते हुए भी उसका हृदय कोमल था। उसने अपनी जान भी खतरे में डाली तो किसके लिये ? उस मनुष्य के लिये, जिसे अपने कर्त्तव्यपालन के हेतु उसके साथ निरंतर कठोरता का बर्ताव करना पड़ता था।

अपराधियों की एक और कहानी भी है। इससे हमें यह पता चलेगा कि यदि मनुष्यों के बाह्‌य स्वरूपों को देख कर हम अपना मत स्थिर करें तो कितना धोखा खा सकते हैं।

दो कैदी जेल से छूटने के बाद कुछ ऊंचाई पर स्थित मारोनी नामक स्थान के कच्चे सोने के एक व्यापारी के यहाँ नौकर हो गये। व्यापारी उन्हें विश्वस्त मानकर वर्षों तक स्वर्ण-धूलि और किनारे की रेत से रासायनिक क्रिया द्वारा निर्मित स्वर्णमिश्रित कच्चे धातु की डलियाँ उन्हें सौंपता रहा। वे उन्हें पास के स्वर्ण-बाजार में बेचने के लिये ले जाते, पर वह बाजार भी इतना दूर था कि नाव द्वारा वहाँ पहुंचने में तीस दिन लग जाते थे।

एक दिन इन दोनों कैदियों ने भागने का निश्चय किया।

इस प्रकार के कैदियों को अपना दण्ड भुगत लेने के बाद भी वापिस घर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। उन्हें वहीं प्रायश्चित-गृहों में, कभी कभी तो जीवन भर, रहना होता था। गियाना प्रदेश बंजर और सूखा तो था ही, साथ ही वह घने जंगलों और दलदलों से इतना भरा था कि उन लोगों को सदा ही वहाँ भूख और ज्वर से मरने का डर रहता था। उनमें से अधिकतर तो अवसर मिलते ही भाग खड़े होते थे।

सोने के व्यापारी के इन नौकरों ने भी अपने पास नाव पाकर

उससे लाभ उठाना चाहा। अतएव, उन्होंने परले किनारे पर स्थित हालैण्ड के किसी उपनिवेश में भाग जाने का निश्चय किया।

पर इससे पहले जितना भी स्वर्ण उनके स्वामी का उनके पास था उसे उन्होंने एक स्थान पर रख दिया और व्यापारी को पत्र लिखकर उसे उस स्थान का पता बता दिया।

उन्होंने लिखा—"आपने हम पर सदा कृपा रखी है। अतः भागते समय हम इतने कृतघ्न नहीं हो सकते कि जिस धन को आपने विश्वासपूर्वक हमें सौंपा है, उससे हम आपको वंचित कर दें।"

स्मरण रहे, ये दोनों कैदी चोरी-डकैती के लिये दण्डित हुए थे। जो स्वर्ण उनके हाथ में था वह उनके काम आ सकता था। परन्तु उनके अंदर कोई चीज सच्ची और खरी भी थी। उन लोगों के लिये, जो उनके पूर्व इतिहास को जानते थे और उसी के आधार पर अपना मत बनाते थे, वे कुकर्मी, चोर और डाकू थे, परन्तु जो व्यक्ति उनपर विश्वास करना जानता था उसके प्रति वे, सब दोषों के होते हुए भी, विश्वासपात्र बन सकते थे।

नन्हें बच्चो, हमें अपने विचारों में उदार और दूरदर्शी होना चाहिये; अपने साथियों के बारे में कोई भी उतावला मत स्थिर कर लेने से हमें बचना चाहिये। सबसे अच्छा तो यह है कि यदि इसके बिना काम चल जाय तो उनके विषय में कोई मत स्थिर ही न करो।

प्रश्न

१. क्या हम किसी को उसके बाह्य रूप से ही जाँच सकते हैं?

२. चरवाहे का लबादा पहनने वाले भेड़िये की तथा शेर की खाल ओढ़ने वाले

गधे की कहानी क्या तुम्हें मालूम है ? इनसे तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

३. 'यदि तुम्हारा मित्र काना है तो उसका मुंह एक ओर से देखो'—इस वाक्य से तुम क्या समझते हो ?

४. संत फ्रांस्वा ने आगोबीओ शहर के भेड़िये को किस प्रकार वश में किया था ?

५. स्वर्ण का व्यापारी कैदियों को इतना विश्वस्त क्यों मानता था कि वह उन्हें स्वर्ण भी सौंप देता था ?

६. 'उतावली से किसी के बारे में कोई मत नहीं स्थिर कर लेना चाहिये'— इस वाक्य का अर्थ अपनी भाषा में समझाओ ।

७. ठीक जाँच करने के लिये मनुष्य में कौन सा गुण होना चाहिये ?

१०

व्यवस्था

प्राचीन काल के हिन्दू पृथ्वी और जगत् के बारे में एक सुन्दर विचार रखते थे; इस विचार का आशय था व्यवस्था का निरूपण करना।

जिस भूमि-खंड पर मनुष्य रहते थे उसका नाम जम्बूद्वीप था। उसके चारों ओर खारे पानी का एक सागर था। इसके चारों ओर की पृथ्वी क्षीर-सागर से घिरी थी। फिर पृथ्वी और उसके चारों ओर नवनीत का सागर। उसके बाद पहले की तरह पृथ्वी और दधि-सागर, पृथ्वी और सुरा का सागर, फिर पृथ्वी और खांड का सागर, वही क्रम। सातवाँ और अन्तिम सागर शुद्ध निर्मल जल का था। यह बहुत मीठा, सब सागरों से अधिक मीठा था।

यदि तुम पृथ्वी का मानचित्र देखो, जिसका आजकल स्कूलों में व्यवहार होता है, तो तुम्हें वहाँ न खाँड का सागर मिलेगा, न दूध का और न कोई और। वे हिन्दू भी यह नहीं मानते थे कि इन सागरों का सचमुच कोई अस्तित्व है। यह तो एक गहन विचार को समझने का एक मौलिक ढंग था।

यह प्राचीन कथा और अन्य बातों के साथ साथ हमें यह भी बताती है कि संसार में सारा काम व्यवस्थित रूप में, एक क्रम से होता है और यदि इस पृथ्वी पर प्रत्येक वस्तु ठीक अपने स्थान पर न पाई जाती तो यह एक विश्रामदायक, उचित और निवासयोग्य जगह कभी न हो सकती। यदि नमक, दूध, मक्खन, सुरा, खांड,

जल या कोई और बढ़िया पदार्थ पृथक्-पृथक् किसी ढंग से न रखे होते, वरन् इसके विपरीत सब मिलकर खिचड़ी होते, तो कैसे कोई उनका स्वाद ले सकता ?

*

मनुष्यजाति की सब धर्म-पुस्तकें, कई बातों में विभिन्न होती हुई भी, इसी व्यवस्था का पाठ पढ़ाती हैं।

यहूदियों की प्राचीन पुस्तक बाइबल में भी व्यवस्था संबंधी, अपने ढंग की एक कहानी है।

प्रारंभ में सब कुछ अस्तव्यस्त था, अर्थात् चारों ओर अव्यवस्था और अंधकार का साम्राज्य था। ईश्वर ने तब जो पहला काम किया वह था इस अव्यवस्था के ऊपर प्रकाश फेंकना, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई मनुष्य एक अंधेरी और मलिन गुफा में उतरते समय उस पर दीपक का प्रकाश डालता है।

उसके बाद—जैसा कि बाइबल में लिखा है—दिन-प्रतिदिन सब वस्तुएँ क्रमानुसार उस अस्तव्यस्त साम्राज्य से निकलकर व्यवस्थित रूप में प्रकट होती गयीं और अन्त में मनुष्य जाति प्रकट हुई।

व्यवस्था का निर्माण करने और उसे सर्वत्र खोज निकालने का यश मनुष्य को ही मिला है।

ज्योतिषविद् नक्षत्रों की ओर आँखें उठाये देखते रहते हैं और आकाश का मानचित्र बनाते हैं ; वे नक्षत्रों की नियमित गति का अध्ययन करते हैं, उन्हें नाम देते हैं तथा सूर्य के चारों ओर ग्रहों के घूमने का हिसाब रखते हैं। वे पहले ही बता देते हैं कि किस समय चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य-मंडल के बीच में आकर एक ऐसी वस्तु को उत्पन्न

करेगा जिसे हम चन्द्रग्रहण कहते हैं। सारा ज्योतिष-विज्ञान ही व्यवस्था-ज्ञान के ऊपर निर्भर है।

गणितविद्या तो है ही व्यवस्था का विज्ञान। एक बहुत छोटा बालक भी ठीक क्रम में ही गिनती कहना पसंद करता है। उसे शीघ्र ही इस बात का ज्ञान हो जाता है कि एक, पाँच, तीन, दस, दो कहने का कोई अर्थ नहीं, चाहे वह उँगलियों पर गिने या फिर काँच की गोलियों के द्वारा। वह गिनता है : एक, दो, तीन, चार; सारा गणितशास्त्र ही इसी क्रम में से निकलता है।

और, किसी क्रम के बिना, गानविद्या जैसी सुन्दर वस्तु का क्या रूप होगा ? परदे में सात सुर हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि। यदि तुम इन सुरों को एक के बाद एक बजाओ तो सब ठीक चलेगा, पर यदि तुम सबको एकबारगी ही दबाकर उनका एक सुर कर दो, तो वह क्या होगा ! केवल एक विकट कोलाहल। मिलकर तो वे तभी एक सुरीला स्वर निकाल सकेंगे यदि उनमें किसी प्रकार का क्रम होगा। उदाहरणार्थ सा, ग, प, सा इकट्ठे बजकर एक ऐसा स्वर निकालते हैं जिसे हम 'पूर्ण स्वर' कहते हैं। इसी क्रम पर सारी संगीत विद्या आधारित है।

हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि मनुष्य द्वारा आविष्कृत सभी विज्ञानों और कलाओं का आधार व्यवस्था ही है।

*

पर यह क्या और सब वस्तुओं में भी उतनी ही आवश्यक नहीं है ?

यदि तुम एक ऐसे गृह में प्रवेश करते हो, जहाँ गृहस्थी का सब साज-सामान, छोटी-बड़ी चीज इधर-उधर कोनों में बिखरी पड़ी है और उनके ऊपर धूल-मिट्टी की एक मोटी तह जम गयी है, तो तुम

एकदम चिल्ला पड़ते हो—"कैसा कुप्रबन्ध है, कैसी गंदगी है!" क्योंकि गंदगी और अव्यवस्था एक ही चीज है।

इस जगत् में धूल-मिट्टी के लिये भी स्थान है, पर उसका स्थान इन चीजों पर नहीं है।

इसी तरह स्याही का स्थान दावात में है, न कि तुम्हारी उंगलियों या गलीचे पर।

सब काम ठीक तभी चलता है जब प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर हो। स्कूल में तुम्हारी पुस्तकों का और घर में तुम्हारे वस्त्रों और खिलौनों का, प्रत्येक का, अपना निश्चित स्थान होना चाहिये जो केवल उसी का हो, दूसरे उसमें हस्तक्षेप न करें। अन्यथा, दूसरों के साथ तुम्हारे झगड़े होंगे, पुस्तकें फट जायंगी, वस्त्र मैले हो जायंगे और खिलौने खो जायंगे। इतना ही नहीं, उस गड़बड़झाले में से तुम्हें अपनी वस्तुएँ खोज निकालने तथा उन्हें फिर से ठीक-ठाक करने में कष्ट तो उठाना ही पड़ेगा, साथ ही अत्यधिक धैर्य की भी आवश्यकता पड़ेगी, जब कि सब वस्तुओं के अपने स्थान पर होने से कितनी सुविधा हो जाती है।

मनुष्य का समस्त जीवन, उसके सारे कार्य तथा देश की श्री और समृद्धि सब व्यवस्था के इसी सिद्धांत पर आधारित हैं। इसीलिये किसी भी देश की सरकार का पहला कर्त्तव्य है वहाँ सुव्यवस्था स्थापित करना। सम्राट्, राजा अथवा राष्ट्रपति से लेकर साधारण सिपाही तक को इसके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये। प्रत्येक नागरिक का, चाहे वह कोई भी व्यवसाय करता हो, यह कर्त्तव्य है कि वह इस कार्य में योग दे, क्योंकि इस प्रकार वह अपने देश को समृद्ध तथा शक्तिशाली बनाने में सहायक हो सकता है।

थोड़ी सी अव्यवस्था के कितने गंभीर परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं, जरा उनके बारे में सोचो तो !

स्टेशन के अनेक कर्मचारियों को ही लो, चाहे वे फाटक पर चौकीदार हों या इंजन-चालक या फिर कांटा ठीक करने वाले हों, सबको बड़ी सावधानी से नियम और समय का पालन करना होता है जिससे ये इतनी सारी रेलगाड़ियां जो सारे देश में चक्कर लगा रही हैं ठीक समय पर चल तथा पहुंच सकें; एक एक मिनिट का ध्यान उन्हें रखना होता है, जिससे किसी को असुविधा का सामना न करना पड़े। और यदि संयोगवश या असावधानी से यह समस्त क्रम कभी नष्ट हो जाय—चाहे वह एक क्षण के लिए ही हो—तो इसके कितने दुखद परिणाम हो सकते हैं ? गाड़ी का मामूली सा देर होना ही कितनी बातों को उलट-पुलट सकता है। नियत समय पर लोग अपने मित्रों से नहीं मिल सकेंगे, कामकाजी लोग अपने दफ्तरों में देर से पहुंचेंगे, जहाज के यात्री अपने जहाज को नहीं पकड़ सकेंगे; इनके अतिरिक्त और जो जो कष्ट लोगों को उठाने पड़ेंगे उनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

यदि संसार से समस्त व्यवस्था और क्रम अचानक लोप हो जायं तो उसके जो दुखदायी परिणाम होंगे उनके बारे में जरा सोचो तो !

मान लो घड़ी ही नियमितता का अपना सुन्दर उदाहरण देना बंद कर दे और पागल की भाँति कभी आगे और कभी पीछे चलने लगे तो गृहकार्य में कितनी गड़बड़ हो जायगी। ऐसी अवस्था में तो अधिक अच्छा यही रहेगा कि यदि वह ठीक समय नहीं दे सकती तो उससे पीछा छुड़ा लिया जाय।

एक किसान के पुश्तैनी मकान के एक कमरे में एक बड़ी पुरानी घड़ी रखी हुई थी। वह १५० वर्षों से बड़ी ईमानदारी से लोगों

को अपनी टिक-टिक सुनाती आ रही थी। प्रति दिन प्रभात होते ही किसान अपनी घड़ी के पास जाकर देखता कि वह ठीक समय दे रही है या नहीं। एक दिन ज्यों ही वह कमरे में घुसा, घड़ी बोल उठी—"मुझे लगातार काम करते और ठीक समय देते हुए डेढ़ शताब्दी बीत गयी है; मैं अब थक गयी हूँ। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं अब विश्राम करूं और अपनी टिक-टिक बंद कर दूं?"

"पर मेरी अच्छी घड़ी, तुम्हारी यह मांग उचित नहीं।" चतुर किसान नें उत्तर दिया, "तुम शायद यह भूल गयी हो कि प्रत्येक टिक-टिक में तुम्हें एक सेकिण्ड का विश्राम मिल जाता है।"

घड़ी ने एक क्षण तो सोचा और फिर सदा की भांति अपना काम आरंभ कर दिया।

बच्चो, इस कहानी से यह सिद्ध होता है कि व्यवस्थित कार्य में थकावट और विश्राम समान रूप से साथ साथ चलते हैं और नियमितता का पालन करने से व्यर्थ के परिश्रम और कष्टों से बचा जा सकता है।

उचित व्यवस्था होने से प्रत्येक वस्तु की शक्ति कितनी बढ़ जाती है। अधिक शक्तिशाली मशीनें वही होती हैं जिनका प्रत्येक कल-पुर्जा अपना कार्य ठीक और नियमित ढंग से करता है। यही नहीं, ऐसी मशीनों में एक छोटा सा पेच, यदि वह अपने ठीक स्थान पर हो, तो उतना ही उपयोगी हो सकता है जितनी कि कोई बड़ी कल।

इसी प्रकार एक छोटा बच्चा जो अपना कार्य ध्यानपूर्वक करता है अपने स्कूल, घर अर्थात् उस छोटे से संसार की व्यवस्था का एक उपयोगी अंग बन जाता है जो उसे बड़े संसार में प्राप्त है।

व्यवस्था सीखने के लिये प्रारंभ में तो कुछ कष्ट उठाना ही पड़ता है, बिना परिश्रम के कुछ नहीं सीखा जाता। तैरना, नौका

खेना, कुश्ती लड़ना, इनका सीखना कोई सरल नहीं होता। मनुष्य धीरे-धीरे ही इन्हें सीख पाता है। कुछ समय के उपरांत ही हम अपने कार्य नियमित ढंग से और कम से कम कष्ट के साथ करना सीख सकते हैं। और अंत में तो ऐसा हो जाता है कि अव्यवस्था हमें अरुचिकर और दु:खदायी प्रतीत होने लगती है।

जब तुम पहली बार चलना सीखे थे तो तुमने कई गलतियां की थीं; तुम गिरे, तुम्हें चोट लगी और तुम रोये भी। अब तुम बिना इस तरफ ध्यान दिये चलते हो, निपुणता से दौड़ लेते हो। और चलने और दौड़ने की तुम्हारी क्रिया भी तो व्यवस्था की एक बढ़िया मिसाल है; तुम्हारी नसें, तुम्हारे पुट्ठे तथा तुम्हारे सब अंग एक नियमित ढंग से ही तो काम करते हैं।

इस तरह से व्यवस्थित ढंग से किया हुआ काम अंत में स्वभाव बन जाता है।

यह कभी मत सोचो कि नियमित ढंग से और ठीक समय पर काम करने से तुम प्रसन्न नहीं रह पाओगे, या हंस नहीं सकोगे। जब कोई अपना काम विधिपूर्वक करता है तो उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह अपना मुंह गंभीर और उदास बना ले। इस बात की सत्यता सिद्ध करने के लिये हम व्यवस्था सम्बन्धी इस लेख को एक मजेदार प्रसंग से समाप्त करेंगे।

समय-पालन का एक दृष्टान्त सुनो, परन्तु तुम उसका अनुकरण करने की चेष्टा मत करना।

अरब देश की एक स्त्री के पास एक नौकर था। उसने उसे पड़ोस के घर से आग लाने के लिये भेजा। नौकर को रास्ते में मिश्र देश को जाता हुआ एक काफिला मिला। कुछ देर तो वह उन लोगों के साथ बातें करने में लगा रहा और अन्त में उसने उन्हीं के साथ चल
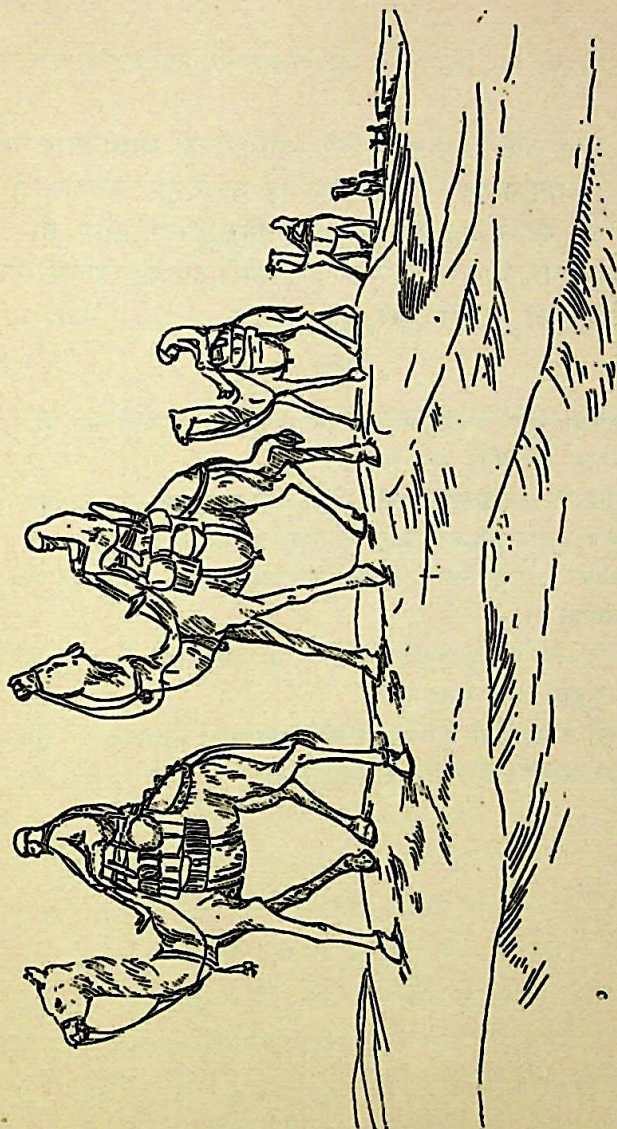
आग लाने को गया हुआ नौकर काफिले के संग हो गया

देने का निश्चय कर लिया। वह पूरे एक वर्ष तक वहां से अनुपस्थित रहा।

वहां से लौटने पर वह अपनी स्वामिनी की आज्ञानुसार पड़ोसी के घर में आग मांगने गया। जब वह जलते हुए कोयले ला रहा था तो उसे ठोकर लग गयी और वह गिर पड़ा, साथ ही उसके हाथ से कोयले भी गिर पड़े और बुझ गये। तब वह चिल्ला पड़ा—

"उतावली कितनी बुरी चीज है!"

प्रश्न

१. प्राचीन काल के हिन्दुओं की भूमंडल सम्बन्धी कल्पना क्या थी? उसका वास्तविक अर्थ क्या है?
२. तुम्हारा सामान यदि बिखरा रहे तो क्या तुम्हें कष्ट और असुविधा होती है? यदि हाँ, तो इससे कैसे बचा जा सकता है?
३. जीवन में उन्नति-लाभ के लिये व्यवस्था अनिवार्य है—इससे तुम क्या समझते हो।
४. अव्यवस्था के बड़े गंभीर परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं—यह कैसे? उदाहरण द्वारा स्पष्ट करो।
५. क्या सभी कार्यों में व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है? और क्या इसे आसानी से सीखा जा सकता है?

११

बनाना और तोड़ना

बालको, यह तो तुम जानते हो कि 'बनाने' और तोड़ने' के क्या अर्थ हैं।

एक सैनिक हाथ में शस्त्र लेकर तोड़ने अर्थात् किसी का नाश करने जाता है।

एक कारीगर नक्शे बनाता है, नींवें खोदता है और फिर मनुष्यों के परिश्रमी हाथ किसान के लिये झोंपड़ा अथवा राजा के लिये महल खड़ा कर देते हैं।

तोड़ने से बनाना अच्छा है पर कभी कभी तोड़ना भी आवश्यक हो जाता है।

और तुम बच्चो, तुम्हारी तो बांहें और हाथ खूब बलिष्ठ हैं; क्या तुम केवल निर्माण ही करोगे ? कभी तोड़ोगे नहीं ? और यदि कभी ऐसा किया तो किसे तोड़ोगे, किसका नाश करोगे ?

दक्षिण भारत के हिन्दुओं की एक प्राचीन कथा है।

एक नवजात शिशु एक बार वृक्षों के एक झुरमुट में पड़ा पाया गया। तुम यह सोच सकते हो कि वह वहाँ पड़ा-पड़ा मर गया होगा, क्योंकि उसकी मां उसे वहाँ छोड़ गयी थी और उसे वापिस ले जाने का उसका कोई विचार नहीं था। जानते हो क्या हुआ ? जिस वृक्ष के नीचे वह पड़ा था, वह हयूपैइल नाम का एक विशेष प्रकार का वृक्ष था। उसके सुन्दर फूलों से मधु के समान मीठी बूंदें टप टप उस नन्हें

शिशु के मुंह में गिरती रहीं और इस प्रकार उसका पालन होता रहा। अंत में एक भली स्त्री ने उसे देखा, वह पास के शिव-मंदिर में पूजा करने के लिये आयी थी। उसका हृदय बच्चे को देखकर द्रवित हो उठा। उसे गोद में लेकर वह घर आ गयी। क्योंकि उनका अपना कोई पुत्र नहीं था, उसके पति ने प्रसन्न हृदय से बच्चे का स्वागत किया।

दोनों उस कुंज में पड़े पाये गये अज्ञातकुलशील बालक का पालन-पोषण करने लगे। प्रारंभ से ही उनके पड़ोसी उन पर व्यंग्य करने लगे थे और कहते थे कि न जाने किस जाति के बच्चे को ये लोग उठा लाये हैं। इस डर से कि उनके पड़ोसी इस बच्चे की खातिर उनसे नाराज न हो जायं उन्होंने उसे एक पालने में डाल कर पालने को गोशाला की छत से लटका दिया। और बच्चे की रक्षा का भार वहाँ रहनेवाले एक पारिया कुटुम्ब को सौंप दिया।

कुछ वर्ष बाद वह लड़का बड़ा हुआ। शरीर के साथ-साथ उसकी मानसिक शक्तियों की भी वृद्धि हुई। अब उसने अपने दयालु पालन-कर्त्ताओं से विदा ली और अकेला यात्रा के लिये निकल पड़ा। कुछ समय तक चल चुकने के बाद वह एक ताड़ के वृक्ष के नीचे सुस्ताने के लिये लेट गया। पेड़ धूप से उसकी रक्षा करने लगा मानो वह भी उसे उस स्त्री के समान ही प्यार करता हो जो उसे वृक्षों के झुरमुट में से उठा लायी थी। यह विश्वास करना कठिन तो है कि ताड़ का पेड़ जिसका तना इतना लंबा होता है किसी को अपने पत्तों से सारे दिन छाया दे सकता है, पर कहानी से हमें यही पता चलता है कि सारे समय उसकी छाया निश्चल रही और जब तक वह लड़का सोता रहा उसे ठंडक पहुँचाती रही।

यह सब क्यों और कैसे हुआ?

होनहार बालक की रक्षिका आ गयी

जन्म से ही बच्चे की इस सुरक्षा का क्या कारण था और ताड़ के पेड़ ने भी धूप से उसका बचाव क्यों किया ? क्योंकि उसका जीवन मूल्यवान था। उस बच्चे को एक दिन तिरुवल्लुवर नामक प्रसिद्ध तामिल कवि, 'कुरल' की मधुर कविताओं का रचयिता बनना था।

उन वस्तुओं और उन व्यक्तियों की जो संसार के लिये कुछ संदेश लाते हैं रक्षा होनी ही चाहिये।

हमको बलिष्ठ बाहु पाकर प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि उनकी शक्ति से हम रोग और मृत्यु से उन सबकी रक्षा कर सकते हैं जो सत्य, शिव, और सुन्दर हैं।

इन्हीं की रक्षा करने के लिये हमें कभी-कभी लड़ना तथा नाश करना पड़ता है।

*

तिरुवल्लुवर लोगों को अपने अमृतवचनों का आस्वादन ही नहीं कराते थे वरन् वे लड़ना और मारना भी जानते थे। उन्होंने कावेरी-पकम गाँव के दैत्य को मारा था।

कावेरीपकम में एक किसान रहता था। उसके पास एक-हजार पशु और अन्न के कई विस्तृत खेत थे। पर इनके आस-पास एक दैत्य का बड़ा डर रहता था। खड़ी फसल को वह जड़ समेत उखाड़ देता; पशुओं और मनुष्यों की हत्या कर देता। कावेरीपकम के निवासियों के हृदय इससे बहुत विक्षुब्ध हो उठे थे।

उस धनी किसान ने घोषणा की—"जो वीर हमें इस दैत्य के अत्याचार से मुक्त कर देगा उसे मैं एक मकान, खेत तथा बहुत सा धन दूंगा।"

बहुत समय तक कोई वीर आगे नहीं बढ़ा। किसान तब

पर्वतवासी मुनियों के पास गया और उनसे उसने राक्षस से छुटकारा पाने का उपाय पूछा।

पर्वतवासी मुनि बोले—"तिरुवल्लुवर के पास जाओ।"

इस प्रकार वह किसान इस युवक कवि के पास आया और उनसे सहायता के लिये प्रार्थना की। उन्होंने कुछ राख अपनी हथेली पर ली और उस पर पाँच पवित्र अक्षर लिखे, फिर मंत्र पढ़कर वह राख ऊपर हवा में उड़ा दी। उन अक्षरों और मंत्रों की शक्ति का उस दैत्य पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह मर गया। कावेरीपकम के लोग इससे बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ वर्ष बाद तिरुवल्लुवर मदुरा शहर गये। बहुत से लोग उनकी सुन्दर कविता को सुनने के लिये वहाँ एकत्र हुए। वृक्षों के कुंज में पाये गये बच्चे द्वारा रचित इन पदों को सुनकर वे मुग्ध हो गये—

"भला बनने से बढ़कर और कोई वस्तु इस संसार में मिलनी अत्यन्त कठिन है।"

वहाँ पास ही खिले कमलोंवाले एक तालाब के किनारे चौकी पर विद्वान् कवियों की एक टोली बैठी थी। ये लोग एक नीच जाति-वाले कवि को चौकी पर अपने साथ स्थान नहीं देना चाहते थे। प्रश्न पर प्रश्न कर के वे उन्हें भ्रम में डालने तथा उनकी भूलें पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। अन्त में उन्होंने तिरुवल्लुवर से कहा—"ओ पारिया, अपनी कविता की पुस्तक तू इस चौकी पर रख दे। यदि यह सचमुच ही सुन्दर साहित्यिक कृति हुई तो यह चौकी 'कुरल' के अतिरिक्त और किसी को अपने ऊपर स्थान नहीं देगी।"

तिरुवल्लुवर ने अपनी पुस्तक पानी के समीपवाली उस चौकी पर रख दी। कहानी में आगे आता है कि पुस्तक का उस पर रखा जाना था कि वह इतनी छोटी हो गई कि उस पर केवल उस पुस्तक को

ही स्थान मिल सका और मदुरा के वे अभिमानी और ईर्षालु कवि दूसरी ओर तालाब के जल में गिर पड़े। हां, वे उनचास द्वेषी तालाब में कमलों के मध्य में जा पड़े। लज्जित मुख, भीगे शरीर लिये वे बाहर निकले। उस दिन से तामिल भाषाभाषी 'कुरल' से बड़ा प्रेम करने लगे हैं।

*

बच्चो, कावेरीपकम के राक्षस के मारे जाने से क्या तुम्हें दुःख हुआ है? और मदुरा के वे उनचास शरारती कवि जो पानी में गिर पड़े थे यह क्या तुम्हें बुरा लगा है?

इस संसार में भली वस्तुए भी हैं और बुरी भी। हमें भली वस्तुओं से तो प्रेम करना चाहिये, उनकी रक्षा करनी चाहिये और बुरी वस्तुओं से लड़ना तथा उनका नाश करना चाहिये।

इस भले कवि की तरह सभी बुद्धिमान् लोग ऐसा करना जानते हैं और कर भी सकते हैं। वे जितने अधिक बुद्धिमान होंगे उतनी ही अच्छी तरह वे यहाँ कार्य कर सकेंगे। छोटे बच्चे, जिनकी बुद्धि अभी उतनी विकसित नहीं हुई है और जो उतना बल भी नहीं रखते, उनका अनुकरण करके अपना साहस बढ़ा सकते हैं।

तिरुवल्लुवर की बहन अव्वई ने अपने भाई का इसी प्रकार का अनुकरण किया था।

एक दिन वह उराइयूर गाँव की एक छोटी-सी गली में जमीन पर बैठी थी। वहाँ से तीन व्यक्ति घूमते हुए निकले। एक राजा था और दो कवि। जब राजा आया तो उसने एक घुटना टेक कर उसके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया। अब पहला कवि गुजरा तो उसके सम्मानार्थ उसने अपना दूसरा घुटना झुकाया। पर जब

दूसरा कवि उसके समीप पहुँचा तो उसने अपनी दोनों टांगें फैलाकर उसका रास्ता ही रोक दिया।

अव्वई का यह व्यवहार देखने में तो अशिष्ट था, पर वह अपने उत्तरदायित्व को भली भाँति समझती थी। वास्तव में दूसरा कवि एक ढोंगी मनुष्य था। उसमें प्रतिभा तो कुछ थी नहीं, वह कोरा प्रदर्शन ही करता था।

उस कवि को इससे बड़ी खीज हुई और उसने अव्वई से उसके इस बर्त्ताव का कारण पूछा।

"एक ऐसे पद की रचना करो जिसमें 'विवेक' शब्द तीन बार आये", अव्वई ने उत्तर दिया।

यह देखकर कि वहां बहुत से लोग इकट्ठे हो गये हैं, कवि ने भी सोचा कि यह विद्वत्ता दिखाने का अच्छा अवसर है। उसने बहुतेरा प्रयत्न किया पर दो बार से अधिक वह किसी प्रकार भी उस शब्द को अपनी कविता में न ला सका।

अव्वई ने व्यंग्य किया—"तुम्हारे उस अन्तिम 'विवेक' का क्या हुआ जो अभी बाकी बचा है और जिसे तुम्हारी कविता में भी स्थान नहीं मिला ?" इस प्रकार उसने उस ढोंगी को लज्जित किया।

क्या तुम यह सोचते हो कि अव्वई ने अपने इस अशिष्ट व्यवहार में प्रसन्नता अनुभव की थी ? नहीं, तनिक भी नहीं। पर ढोंग उसको सम्मानयोग्य प्रतीत नहीं हुआ। वह इस बात की विवेचना कर सकती थी कि किसका आदर होना चाहिये और किसका नहीं। वह कहती थी—"श्रेष्ठ पुरुष उस हंस की तरह, जो सदा खिले कमलों से

युक्त झील की ही ओर जाता है, सदा भली वस्तु की ओर झुकता है।

पर दुष्टप्रकृति के लोग सदा बुराई की ही खोज करते हैं, जैसे गिद्ध दुर्गन्ध द्वारा आकर्षित होकर सड़े-गले मुर्दों पर झपटता है।"

संसार के सब देशों के बालको, वे कौन-सी बुरी वस्तुएं हैं जिनके विरुद्ध तुम्हें लड़ाई करनी सीखनी चाहिए? किन वस्तुओं का तुम्हें नाश करना चाहिए? किन वस्तुओं पर तुम्हें अधिकार स्थापित कर लेना चाहिये? उन सब वस्तुओं पर जो मनुष्य के जीवन या उसकी उन्नति के लिये हानिकारक हैं, जो उसे दुर्बल बनाती है, जो उसे अधोगति या दुःख की ओर ले जाती हैं।

वेगवती नदियों के ऊपर पुल और बाढ़ को रोकने के लिये बांध बनाकर मनुष्य को पानी के दुर्दाम वेग को अपने अधीन करना चाहिये।

उसे ऐसे मजबूत जहाज बनाने चाहिये जो हवा और लहरों की प्रचण्डता का सामना कर सकें।

दलदल वाली भूमि के घातक कीचड़-पानी को निकालना या सुखा देना चाहिये और इस प्रकार उसकी सील में जो ज्वररूपी दैत्य रहता है उसका नाश कर देना चाहिये।

जहाँ-जहाँ जंगली जानवरों का डर है वहाँ वहाँ उनसे लड़ाई ठानकर उनका नाश कर देना चाहिये।

ऐसे होशियार डाक्टर पैदा होने चाहिये जो सब जगह से दुःख-दर्द और बीमारी को भगा दें।

मनुष्य को भूख के सबसे बड़े कारण गरीबी को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। यह भूख ही उन माताओं को रुलाती है जिनके बच्चों को रोटी तक नसीब नहीं होती।

सबके जीवन को दुःखमय बनानेवाली दुष्टता, ईर्षा और अन्याय का उसे नाश करना चाहिये।

*

इसके विपरीत वे कौन सी वस्तुएँ हैं जिनके साथ मनुष्य को प्रेम करना चाहिये, जिनकी रक्षा की जानी चाहिये ? वे वस्तुएं जो उसे जीवित रखती हैं, उसे अधिक भला बनाती हैं तथा उसे शक्ति एवं आनन्द प्रदान करती हैं।

उसे संसार में आनेवाले प्रत्येक बच्चे के अमूल्य जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

उसे लाभकारी वृक्षों की रक्षा करनी चाहिये; ऐसे फूल और पौधे लगाने चाहिये जो उसे आहार और आनन्द प्रदान करते हैं।

ऐसे मकान बनाने चाहिये जो मजबूत, स्वास्थ्यप्रद और खुले हों।

पवित्र देवालयों, मूर्त्तियों, चित्रों, बर्त्तनों, कसीदे के कामों, सुमधुर गीतों और ललित कविताओं की बड़ी सावधानी से रक्षा की जानी चाहिये। संक्षेप में उन सब चीजों की रक्षा की जानी चाहिये जो सुन्दर होने के कारण मनुष्य के आनन्द की वृद्धि करती हैं।

भारतवर्ष और दूसरे देशों के बच्चो, सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य को उन हृदयों की रक्षा करनी चाहिये जो प्रेम करते हैं, उस बुद्धि की रक्षा करनी चाहिये जो सत्य का चिंतन करती हैं, उन हाथों की रक्षा करनी चाहिये जो सच्चे और न्याययुक्त काम करते हैं।

प्रश्न

१. क्या यह सत्य है कि बहुत बार वस्तुओं को तोड़ना भी आवश्यक हो जाता है ? यदि उन्हें न तोड़ा जाय तो क्या होगा ?
२. किन वस्तुओं की रक्षा के लिए हमें लड़ना और संहार करना पड़ता है ?
३. किन वस्तुओं के विरुद्ध तुम्हें लड़ाई करना सीखना चाहिए ?
४. सुन्दर वस्तुओं की रक्षा हमें क्यों करनी चाहिए ?